# धम्म रसायणं

आचार्य पद्मनन्दि विरचित

''सम्पादक''

आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

प्रकाशक:

**श्री सत्यार्थी मीडीया**

रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा

फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

ॐ ह्रीं नमः

प्रतियाँ : 2,000

तृतीय संस्करण : अगस्त 2017

# धम्म रसायणं

**आचार्य वसुनंदी मुनि**

मंगलाशीष:

प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती श्वेतपिच्छाचार्य श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज

**श्री सत्यार्थी मीडीया प्रकाशक**

रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा

फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

मुद्रक :जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज''

**मो. 9058017645**

प्रस्तुत पुस्तक में मुद्रित समस्त सामग्री, आवरण पृष्ठ, चित्रादि के सम्बन्ध में प्रकाशक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। इसके किसी भी अंश को पूर्व में बिना लिखित अनुमति के मुद्रित करना या करवाना, कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन होगा, जिसका सम्पूर्ण दायित्व उन्हीं का होगा और हर्जे – खर्चे के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे ।

रुपये 100/-

# जीवन के सार्थक क्षण-
# पठनीय कहानी

संसार का प्रत्येक द्रव्य अपना प्रभाव सामने वाले द्रव्य पर अवश्य छोड़ता है, अपने से हीन शक्ति वाले को प्रभावित करता है एवं उत्कृष्ट शक्ति वाले से प्रभावित भी होता है। यथा शक्कर की चासनी (सीरा) की एक बूँद यदि नमक की झील में पड़ जाये तो वह अपना अस्तित्व बताने में भी असमर्थ होती है तथा वह भी खारी हो जाती है। यदि नमक का एक कण, एक हौज (टंकी) में (जो कि शक्कर की चासनी से भरी हुई है) पड़ जाये तो वह कण भी प्रभाव हीन हो जाता है। इसी प्रकार कर्मों व आत्मा के गुणों का प्रभाव है अथवा पानी की एक बूँद जैसी संगति में चली जाती है, वह उसी प्रकार के गुणों को प्राप्त कर लेती हैं। जैसे गन्ने, अंगूर, सेव, चीकू, नारियल में वह पानी की बूँद मीठी हो जाती है तथा वह पानी की बूँद नींबू, आम, टमाटर में खट्टी, मिर्ची में चरपरी एवं नीम, चिरायता, गिलोय, करेला आदि में कड़वी, आँवला में कषायली व गुलाब, कमल, गेंदा, केतकी, जुही, केवड़ा, चम्पा, चमेली आदि पुष्पों में सुगन्धित प्याज, लहसुन, सड़े-गले पदार्थों में दुर्गन्धित, अथवा टमाटर में लाल, आम में पीली, जामुन में नीली, अंगूर करेला में हरी, केला, नारियल, दूध में सफेद, गुलाब में गुलाबी आदि।

इसी प्रकार संसारी प्राणी भी अपना प्रभाव अन्य प्राणियों पर छोड़ता है, या तो वह अन्य से प्रभावित हो जाता है या वह स्वयं दूसरों को प्रभावित करता है, जैसे बड़ी चुम्बक छोटी सी आलपिनों/कीलों को अपनी ओर खींच लेती है तथा वही चुम्बक अपने से बड़े लोहे के गोले के पास स्वयं खिंच कर चली जाती है। उसी प्रकार साधु व गृहस्थों का सम्बन्ध है। यथार्थ संत, साधु, पुरुष, महात्मा अपनी तपोमय साधना व ज्ञान के दिव्य प्रकाश से प्राणी मात्र को आलोकित एवं आनन्दित कर देते हैं जैसे कि तीर्थंकरों के जन्म के समय क्षण भर के लिए तीनों लोकों में शांति छा जाती है तथा संसार के संतभेष धारी



**क्षुद्र पुरुष या संतपुरुष भी गृहथों से प्रभावित हो उन जैसी क्रिया करने लग जाते हैं। किसी क्रूर, दुष्ट, डाकू के प्रभाव से छोटे-छोटे बालकों में भी क्रूरता के संस्कार पड़ जाते हैं। सज्जन अपनी सज्जनता को एवं दुर्जन अपनी दुर्जनता को प्रसारित-प्रचारित करते हैं तथा वे वही प्रभाव छोड़ते हैं जो उनके पास हैं। जिसके पास जो होता है वह वही वस्तु दे सकता है, अन्य नहीं जैसे गाय के पास दूध है तो वह दूध देती हैं, नदी के पास जल है तो वह जल देती हैं, वृक्षों के पास फल, पुष्प व छाया है तो वही देते हैं, गधे या खरगोश के पास सींग नहीं होते हैं तो वे कहाँ से दे सकेंगे?**

**शरद ऋतु की पूर्णिमा के चन्द्रमा की चाँदनी, चंदन लेप, गंगा नदी का नीर व अन्य शीतल पदार्थों को वे ही श्रेष्ठ व शीतल कहते हैं, जिन्होंने संतों की अमृतमयी, अनुपम माधुर्य युक्त हितोपदेशी, वात्सल्य भावना में सना हुआ, करुणापूर्ण धर्मोपदेश नहीं सुना। उन्हें भी माता-पिता का लाड़-प्यार श्रेष्ठ दिखता है जिनको गुरु का वरदहस्त आर्शीवाद एवं वात्सल्य नहीं मिला।**

**क्षर भर का संत सानिध्य भी अपना प्रभाव दिखाये बिना नहीं रहता, यथा गुलाब पुष्प व प्याज, कपूर की गंध व हींग की गंध या मिर्च की गंध। यदि कोई कहे कि अल्प समय का संत सानिध्य/साधु समागम हमें क्या दे सकता है? उनके लिए हमारा कहना है कि जिस प्रकार अन्तर्मुहूर्त के लिए भी मुट्ठी में रखा चन्दन का चूर्ण अपनी सुवास छोड़े बिना नहीं जाता है तथा क्षणार्द्ध के लिए स्पर्श मात्र किया हुआ कोयला अपनी कालिमा छोड़े बिना नहीं जाता अथवा अग्नि व बर्फ का क्षणभर भी स्पश करें, वे अपना प्रभाव बता ही देते हैं। इसी प्रकार संत/सज्जन/साधु/पुरुषों के सानिध्य व दुर्जनों के सानिध्य का प्रभाव हाता है। अन्तर्मुहूर्त तक का संत सानिध्य भी अनेकों कर्मों को नष्ट करने में समर्थ कारण है। इसी बात को तुलसी दास ने कहा भी है-**

**एक घड़ी आधी घड़ी, आधी की पुनि आध।**
**तुलसी संगत साधु की, कटैं कोटि अपराध।।**

जिनागम में ऐसे अनेक (गणनातीत/अगणित) उदाहरण उपलब्ध हैं, जिनमें क्षणभर की साधु संगति का फल दुःख क्षय, सुख समृद्धि की प्राप्ति, देव विभूति की प्राप्ति, आरोग्य लाभ, तन, धन, मन, वचन की अनुकूलता एवं परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति कहा गया है। सत्संगति को कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणि रत्न, पारसमणि से भी श्रेष्ठ माना है। यथा-

**पारसमणि व संत में, भारी अन्तर जान।**
**वह लोहा सोना करे, वे करते आप समान।।**

साधु पुरुषों के दर्शन भी महान् पुण्योदय से होते हैं, ये चलते फिरते, सदैव फल देने वाले कल्पवृक्ष सम उपकारी होते हैं, जिनागम में कहा है कि-

**साधुनां दर्शन पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः।**
**कालेन फलति तीर्थः, सद्यः साधु समागमः।।**

विषय- कषाय, आरम्भ परिग्रह व सर्व सावद्यों से रहित, ज्ञान, ध्यान व तप में लीन ऐसे वीतरागी संतों का यदि क्षण भर का भी सानिध्य मिल जाये तो अपने जीवन को धन्य मानना चाहिए तथा अपना तन-मन-धन सब कुछ न्यौछावर करके भी इनकी संगति मिले तब भी वह श्रेष्ठभूत साधु संगति करनी चाहिए क्योंकि,

महामनीषी, नीतिकारों ने भी कहा है-
**यह तन विष बेलड़ी, गुरु अमृत की खान।**
**शीश दिये से गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।**

सद्गुरुओं/दिगम्बर संतों के सानिध्य में रहकर जो आनन्द मिलता है, वह आनंद स्वर्गों (बैकुण्ठ) में भी दुर्लभ है। इसीलिए कबीर दास को



रोककर यह कहना पड़ा कि-

**राम बुलावा भेजियो, दिया कबीरा रोय।**
**जो सुख है सत्संग में, बैकुण्ठ में न होय।।**

हम सभी युसुफ सराय/ग्रीन पार्क दिल्ली की दिगम्बर जैन समाज का असीम पुण्य उदय हुआ है कि हमें दिगम्बर संत श्री मुनिराज निर्णय सागर जी महाराज का ससंघ चातुर्मास प्राप्त हुआ। चातुर्मास में हमें जीवन जीने की सही पद्धति का ज्ञान, आबाल-वृद्धों में धर्म के संस्कार, सम्यग्ज्ञान व स्वाध्याय की शुभ प्रेरणा, एकान्तवाद की दुर्गन्ध रूप/मिथ्यात्व से मुक्ति, देव-शास्त्र गुरु की भक्ति करने की अपूर्व लगन, पंचेन्द्रिय संबंधी विषयों से विरक्ति का भाव, कषायों को उपशमन करने का उपाय एवं आत्म कल्याण का पाठ मुनिसंघ से सीखने को मिला।

मुनि श्री के ग्रीन पार्क दिल्ली के मात्र १२६ दिन के सानिध्य में जीवन को सफल व सार्थ बनाने के रहस्यमयी, जिन सूत्र मिल गये। मुनि श्री के सानिध्य में सिद्ध चक्र महामंडल विधान, जिन सहस्रनाम विधान एवं विश्वशांति महायज्ञ, पंच परमेष्ठी विधान, त्रिकाल चौबीसी विधान, नवग्रह विधान एवं १२६ कलशों से मानस्तंभ में स्थित जिनबिम्बों का महमस्काभिषेक, चातुर्मास प्रतिष्ठान निष्ठापन व पिच्छी परिवर्तन आदि की महासभायें व आयोजन भी अत्यन्त धर्म प्रभावना के साथ सांनद सम्पन्न हुये।

पर्यूषण में आयोजित 'श्रावक साधना एवं धर्म संस्कार शिविर' जो यहाँ के लिए अद्भुत, अभूतपूर्व एवं अनुपम उपलब्धि रही ऐसा शिविर जीवन में प्रथम बार ही देखने को मिला। "जो आनन्द ध्यान शिविर में आया वह आनन्द जीवन में कभी नहीं आया" यदि ऐसा कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। तथा मध्यान्ह काल की तत्वार्थ सूत्र की क्लास में किया गया शंका समाधान भी हृदय में दीर्घकालीन से बनी गुत्थियों को सुलझाने में कार्य कर रहा तथा धर्म संस्कार व प्रतिक्रमण की कक्षायें भी कम प्रभावशाली नहीं रहीं। बारह दिनों तक निरन्तर गृहत्यागी व साधक ब्रह्मचारी बनकर जो साधना की,

यदि वह चिरकाल के लिए मोक्ष प्राप्त करना कोई कठिन कार्य नहीं है। अर्थात् ''ऐसी निर्दोष साधना सुदीर्घ काल तक यदि हम कर लें तो नियम से मोक्ष को प्राप्त कर लेंगे'' ऐसा हमारा विश्वास है।

परम पूज्य मुनि श्री निरंतर स्वाध्याय, अध्ययन, अध्यापन, सामायिक देव वंदना, ध्यान, तप आदि में ही संलग्न रहे, उनके संघ रथ ऐलक श्री १०५ विमुक्त सागर जी, छु. १०५ श्री विशंक सागर जी भी समय-समय पर प्रवचन वे स्वाध्याय के माध्यम से आत्म कल्याण की प्रेरणा देते रहे इस चातुर्मास में मुनि श्री व उनके संघ के सानिध्य में हमने आचार्य श्री अमोघ वर्ष द्वारा रचित प्रश्नोत्तरी रत्नमालिका, पूज्य आ. श्री पदमनंदी रचित परमार्थ विशंति, पूज्य आचार्य श्री पूजयपाद देवनंदी रचित इष्टोपदेश, आ. श्री उमास्वामी द्वारा विरचित-तत्वार्थ सूत्र, आ. श्री कुन्द-कुन्द स्वामी जी द्वारा विरचित रयणसार एवं समयसार के कुछ अधिकारों का अध्ययन किया। इसके साथ ही लघु स्त्रोतों, भावनाओं, हिन्दी के पाठों व संस्कृत की भक्तियों का भी अर्थ सहित, सुगम व सरल भाषा में अध्ययन किया।

उपरोक्त कक्षाओं के अतिरिक्त मुनि श्री व संघस्थ साधुओं के मुखारविंद गौतम स्वामी चरित्र, पुण्याश्रव कथाकोष, प्रद्युम्न चरित्र, चारुदत्त चरित्र, धन्य कुमार चरित्र, चित्रसेन-पद्मावती चरित्र। नंगानंग कुमार चरित्र, वरांग चरित्र, शालिभद्र चारित्र, सुकुमाल चरित्र, योगामृत एवं प्रवचनसार के कुछ अंश का स्वाध्याय भी सुना अंजना व पवनंजय के जीवन चरित्र पर मनमोहक प्रवचन, श्रावक धर्म व उत्तम क्षमादि १० श्रमण धर्म बारह भावना एवं समय-समय पर प्रासंगिक जीवन्त प्रवचन भी सुनें।

प०पू० मुनि श्री गुणों के सागर हैं, उनके गुणों का बखान करना, सूरज को दीपक दिखाने के समान ही होगा। हमने अपनी स्थूल बुद्धि से देखा है कि मुनि श्री ख्याति, पूजा, लाभ, बड़ाई (नामवरी) से दूर रहते हैं। पद, उपाधि व यश की कामना आदि की ईहा से रहित है। सहज, सरल, अभीक्षण ज्ञानोपयोगी, समभावी, उपशान्त मूर्ति व क्षमाशील हैं जिनदर्शन की प्रभावना व आत्म साधना की साधना में रत, संयमासक्त, निस्पृही संत हैं। ये जिन दर्शन



प्रभावना, कलैण्डर, पत्रिका व चित्रों से नहीं अपितु निर्मल चारित्र को निर्माण कर करना चाहते हैं। उनकी दृश्टि में निर्मल आचरण व निष्कांक्ष श्रद्धा युक्त साधना तथा वैराग्य परक ज्ञानाभ्यास ही धर्म है। ये आदर्श तपस्वी ही हमारे संत, अरिहंत, भगवंत व गुरु हैं। ये अपनी भोली सी सूरत व मोहनी मूरत से हर किसी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं इनके चेहरे पर सदैव निश्छल, वात्यसल्य युक्त मुस्कान ही सदैव झलकती दिखायी देती है।

इनके पुनीत सानिध्य में १२६ दिन तक यहाँ मेला सा लगा रहा, हमारा ग्रीन पार्क चार माह तक किसी अतिशय क्षेत्र की महिमा से कम नहीं रहा। मुनिसंघ के सानिध्य का लाभ कैलाश नगर, कृष्णानगर व धर्मपुरा (चाँदनी चौक) वाले महानुभावों ने भी प्राप्त किया। वहाँ भी विभिन्न विधान व शिविरों का आयोजन हुआ। पूज्य ऐलक जी की पावन प्रेरणा प्राप्त कर हमने भगवान महावीर स्वामी जी की २६००वीं जन्म जयन्ती पर तेरह ग्रंथ प्रकाशित करने का संकल्प लिया था। यह कार्य हमने (पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर समिति/जैन सभा युसुफ सराय दिल्ली) आज आपके हाथों में ग्रन्थ सौंप कर पूर्ण किया है। हम (सम्पूर्ण जैन समाज ग्रीन पार्क) आज अत्यन्त आनंदित हैं जो कि यह शुभ कार्य करने में प्रभु कृपा व गुरु आशीर्वाद से अल्पकाल में ही समर्थ हो सकें। हमारी जैन समाज सदैव सच्चे देव-शास्त्र गुरु धर्म व साधर्मी जनों की सेवा में समर्पित रही है, और आगे भी ऐसे शुभ कार्य निरन्तर करते रहें, ऐसा श्री गुरु से मंगल आशीर्वाद चाहते हैं। इसी पवित्र भावना के साथ ही श्री गुरुदेव के चरणों में व समस्त मुनि संघ के चरणों में मन, वचन, काय से क्षमा मांगते हुए उनके चरणों में बारम्बार नमोऽस्तु करते हैं।

# धम्म रसायणं

सिरिपउमणंदिमुणिणा रइयं

**णमिऊण देवदेवं धरणिंदणरिंदइंदथुयचरणं।**
णाणं जस्स अणंतं लोयालोयं पयासेइ।।1।।
बुहजणमणोहिरामं जाइजरामरणदुक्खणासयरं।
इहपरलोयहिद (दं) त्थं तं धम्मरसायणं बोच्छं।।2।।

नत्वा देवदेवं धरणेन्द्र-नरेन्द्रेन्द्रस्तुतचरणं।
ज्ञानं यस्यानन्तं लोकालोकं प्रकाशयति।।1।।
बुधजनमनोऽभिरामं जातिजरामरणदुः खनाशकरम्।
इहपरलोकहितार्थं तं धर्मरसायनं वक्ष्ये।।2।।

(जस्म) जिनके (चरणं) चरण (धरणिदणरिदइंदथुय) धरणेन्द्र-चक्रवर्ती-इन्द्र से स्तुत हैं (जस्स) जिनका (णाणं) ज्ञान (अणंतं) अनन्त (लोकालोयं) लोक-अलोक को (पयासेइ) प्रकाशित करता है (तं) उन (देवदेवं) देवाधिदेव को (णमिऊण) नमस्कार करके (मैं पद्मनन्दी मुनि) (इहपरलोहित दत्थं) इस लोक व परलोक के हित के लिए (जाइजरामरणदुक्खणासयरं) जन्म-जरा-मृत्यु रूप दुःखों का नाशक (बहुजणमणोहिरामं) बुधजनों के मन



**को आनन्दकर (ऐसे) (तं) उस (धम्मरसायणं) धर्मरसायन को (वोच्छं) कहूँगा।**

**१. जिसका अनन्तज्ञान लोकालोक को प्रकाशित करता है। (मैं) धरणेन्द्र, नरेन्द्र, इन्द्र से स्तुत देवाधिदेव के चरण को नमन कर उस।**

**२. बुधजन के मन के लिए प्रिय, जाति, जन्म, जरा, बुढ़ापा, और मरण रूप दुःख के नाशक धर्म रसायन को कहूँगा।**

**धम्मो तिलायबंधू धम्मो सरणं हवे तिहुयणस्स।**
**धम्मेण पूयणीओ होइ णरो सव्वलोयस्स।।३।।**
**धर्मः त्रिलोकबन्धुः धर्मः शरणं भवेत् त्रिभुवनस्य।**
**धर्मेण पूजनीयः भवति नरः सर्वलोकस्य।।३।।**

**(धम्मो) धर्म (तिलोयबंधू) तीन लोक का बन्धु है (धम्मो) धर्म (तिहुयणस्स) तीन भुवन में (सरणं) शरण (हवे) है। (धम्मेण) धर्म से (णरो) मनुष्य (सव्वलोयस्स) सर्व लोक में (पूयणीओ) पूजनीय (होइ) होता है।**

**धर्म तीन लोक का अकारण बन्धु है, धर्म तीन भुवन में शरण है तथा धर्म से ही मनुष्य सर्वलोक में पूजनीय होता है।**

**धम्मेण कुलं विउलं धम्मेण य दिव्यरूवमारोग्गं।**
**धम्मेण जए कित्ती धम्मेण होइ सोहग्गां।।४।।**
**धर्मेण कुलं विपुलं धर्मेण च दिव्यरूपमारोग्यम्।**
**धर्मेण जगति कीर्तिः धर्मेण भवति सौभाग्यम्।।**

**(धम्मेण) धर्म से (विउलं) विपुल (कुलं) कुल, (धम्मेण) धर्म से (दिव्यरूवमारोग्गं) दिव्य रूप, निरोगता (धम्मेण) धर्म से (जए) जगत् में (कित्ती) कीर्ति (य) और (सौहाग्गं) सौभाग्य (होइ) प्राप्त होता है।**

**धर्म से कुल, श्रेष्ठ (उत्तम) धर्म से दिव्य रूप और आरोग्य, धर्म से जगत में कीर्ति तथा धर्म से सौभाग्य (रत्नत्रय) प्राप्त होता है।**

वरभवणजाणवाहणसयणासणपाणभोयणाणं च।
वरजुवइवत्थुभूसण संपत्ती होइ धम्मेण।।५।।
वरभवनयानवाहनशयनासनपान भोजनानां च।
वरयुवतिवस्त्रभूषणानां संप्राप्तिः भवति धर्मेण।।

(वर) श्रेष्ठ (भवण) मकान (जाण) यान/जहाज (वाहण) वाहन (सयणासण) शयनाशन (पाण) पेय पदार्थ (भोयणाणं) भोजन की (वरजुवइ) अच्छी युवती (च वत्थभूषण) और वस्त्राभूषण की (धम्मेण) धर्म से (संपत्ति होइ) प्राप्त होते हैं।

धर्म से श्रेष्ठ भवन, यान-जहाज आदि वाहन शयन (शय्या) आसन, पान (पेय-पदार्थ) रूप भोजनों के लिए तथा उत्तम युवती वस्त्र, आभूषण संपत्ति (धन-दौलत) प्राप्त होती है।

तं णत्थि जं ण लब्भइ धम्मेण कएण तिहुयणे सयले।
जो पुण धम्मदरिद्दो सो पावइ सव्वदुक्खाइं।।६।।
तन्नास्ति यन्न लभते धर्मेण कृतेन त्रिभुवने सकले।
यः पुनः धर्मदरिद्रः स प्राप्नोति सर्वदुःखानि।।

(सयले तिहुयणे) सारे त्रिभुवन में (तं णत्थि) वह कोई पदार्थ नहीं (जं) जो (धम्मेण कएण) धर्म करने से (लब्भइण) प्राप्त न हो (पुण) पुनः (जं) जो (धम्मदरिद्दो) धर्म दरिद्र हैं (सो) वह (सव्वदुक्खाइं) सर्व दुःखों को (पाइइ) प्राप्त करता है।

सारे तीन लोक में ऐसा कोई एक भी पदार्थ नहीं है जो धर्म करने से प्राप्त न हो अर्थात् धर्म करने से तीन लोक के सारे पदार्थ प्राप्त होते हैं परन्तु जो धर्महीन, श्रद्धाहीन हैं याने कि जो धर्म से द्वेष रखता है, कभी भी धर्म नहीं करता है वह सर्व दुःखों को प्राप्त करता है।



जो धम्मं ण करंतो इच्छइ सुक्खाइं कोइ णिब्बुद्धी।
सो पीलिऊण सिकयं इच्छइ तिल्लं णरो मूढ़ो।।७।।
यो धर्मकुर्वन् इच्छति सुखानि कश्चित् निर्बुद्धिः।
स पीलयित्वा सिकतामिच्छति तैलं नरो मूढः।।

(जो) जो (कोइ) कोई (णिब्बुद्धी) अज्ञानी, मूढ़ बुद्धि (धम्मं) धर्म को (ण) नहीं (करंतो) करता हुआ (सुक्खाइं) सुखों की (इच्छइ) इच्छा करता है (सो) वह (मूढ़ो णरो) मूर्ख मनुष्य (सिकयं पीलिऊण) बालू-रेत को पीलकर (तिल्लं) तेल की (इच्छइ) इच्छा करता है।

जो कोई मूर्ख मनुष्य धर्म को तो करना नहीं चाहता है और सुख की इच्छा करता है वह मूढ़ बालू को पीलकर (पेरकर) उससे तेल की इच्छा करता है। सत्य तो यह है कि जैसे बालू को घानी में डालकर कितना भी पीला जावे पर तेल की प्राप्ति नहीं होती वैसे ही धर्म के बिना कभी भी सुख नहीं मिल सकता।

सव्वो वि जणो धम्मं घोसइ ण य कोइ जाणइ अहम्मं।
धम्माधम्मविसेसं णाऊण णरेण घेत्तव्वं।।८।।
सर्वोऽपि जनः धर्म घोषयति न च कश्चिज्जानाति अधर्मम्।
धर्माधर्मविशेषं ज्ञात्वा नरेण गृहीतव्यम्।

(सव्वो) सब (जणो) मनुष्य (वि) भी (धम्मं) धर्म की (घोसइ) घोषणा करते हैं (य) और (अधम्मं) अधर्म को (कोइ) कोई (जाणइ) जानता (वि) भी (ण) नहीं है। (णरेण) मनुष्यों को (धम्माधम्मविसेसं) धर्म-अधर्म के विशेषण को (णाऊण) जानकर (घेत्तव्वं) ग्रहण करना चाहिए।

सभी जन धर्म की घोषणा करते हैं अधर्म को जानते भी नहीं हैं, किन्तु धर्म और अधर्म के विशेष को जानकर मनुष्य द्वारा जो ग्राह्य है उसे

अच्छे और बुरे की पहचान पूर्वक ही धर्म का विवेचन करना चाहिए।

खीराइं जहा लोए सरिसाइं हवंति वण्णणामेण।
रसभेएण य ताइं वि णाणागुणदोसजुत्ताइं।।९।।
क्षीराणि यथा लोके सदृशानि भवन्ति वर्णनामभ्याम्।
रसभेदेन च तान्यणि नानागुणदोषयुक्तानि।।

(जहा) जिस प्रकार (लोए) लोक में (खीराइं) दूध (वण्णणामेण) वर्ण नाम से (सरिसाइं) समान (हवंति) होते हैं (य) और (ताइं वि) वे ही (रसभेएण) रसभेद से (णाणागुणदोसजुत्ताइं) नाना गुण दोषों से युक्त होते हैं।

जिस प्रकार बकरी का दूध, गाय, भैंस, आंकड़ा आदि सभी दूध वर्ण नाम से सफेद रंग के समान हैं, पर वे सभी दूध गुण-दोषों की अपेक्षा अपनी-अपनी विशेषता लिए होते हैं।

काइं वि खीराइं जए हवंति दुक्खावहाणि जीवाणं
काइं वि तुट्ठिं-पुट्ठिं करंति वरवण्णमारोग्गं।।१०।।
कान्यपि क्षीराणि जगति भवन्ति दुःखप्रदानि जीवानां।
कान्यापि तुष्टिं पुष्टिं कुर्वन्ति वरवर्णमारोग्यम्।।

(जए) संसार में (काइं) कोई (खीराइं) दूध (वि) तो (जीवाणं) जीवों को (दुक्खावहाणि) दुःख प्रदायक (हवंति) होते हैं (वि) तथा (काइं) कोई (जीवाणं) जीवों को (वरवण्णं) अच्छा उत्तम वर्ण (आरोग्गं) आरोग्य, (तुट्ठि-पुट्ठिं) संतुष्ट व पुष्ट (करंति) करते हैं।

संसार में अनेक प्रकार के दूध हैं, उनमें कोई दूध जीवों को कष्टप्रद होते हैं और कोई दूध जीवों के शरीर को हष्ट-पुष्ट निरोग व रूपवान बनाते हैं। गाय का दूध पौष्टिक मस्तिष्क को विशेष लाभदायी होता है और आंकड़े



का दूध जीवों के प्राणों का घात करने वाला है।

धम्मा य तहा लोए अणेयभेया हवंति णायव्वा।
णामेण समा सव्वे गुणण पुण उत्तमा केइ।।११।।
धर्माश्च तथा लोके अनुकभेदा भवन्ति ज्ञातव्या।
नाम्ना समा सर्वे गुणेन पुनरूत्तमाः केचित्।।

(य) और (तहा) उसी प्रकार (लोए) लोक में (धम्मा) धर्म के (अणेयभेया) अनेक भेद (हवंति) होते हैं (पुण) पुनः (णामेण) नाम से (सव्वे समा) सब धर्म समान है (गुणेण) गुण से (उत्तमा) उत्तम कोई है ऐसा (णायव्वा) जानना चाहिए।

संसार में धर्म बहुत हैं वे नाम से समान हैं किन्तु, उत्तम धर्म कोई अवश्य होता है ऐसा जानना चाहिए। आत्म-हितकारी धर्म सर्वोत्तम है।

पावंति केइ दुक्खं णारयतिरियकुमाणुस्सजोणीसु।
पावंति पुणो दुक्खं केई पुणु हीणदेवत्तं।।१२।।
प्राप्नुवन्ति केचिद्दुःखं नारकतिर्यक्कुमानुषयोनिषु।
प्राप्नुवन्ति पुनर्दुःखं केचित् पुनः हीनदेवत्वे।।

(अधर्म में धर्म बुद्धि के प्रसाद से) (केइ) कोई (णारयतिरियकुमाणुस्सजोणीसु) नारक, तिर्यंच व कुमनुष्य योनियों में (दुक्खं) दुःख को (पावंति) प्राप्त होते हैं। (पुणो) पुनः (केई) कोई (हीणदेवत्तं) हीनदेवपने के (दुक्खं) दुःख को (पावंति) प्राप्त होते हैं (हीणदेवत्तं) भाग्य की मन्दता से

इस संसार में कुछ लोग धर्म के स्वरूप को (अपने आत्म स्वभाव को) न जानने के कारण दुःख को प्राप्त होते हैं और कुछ लोग हीन भाग्य से दुःख को प्राप्त होते हैं।

पावंति केइ धम्मादो माणुससोक्खाइं देवसोक्खाइं।
अव्वावाहमणोवमअणंतसोक्खं च पावंति।।१३।।
प्राप्नुवन्ति केचिद्धर्मतः मानुषसौख्यानि देवसौख्यानि।
अव्याबाधमनुपमानन्तसौख्यं च प्राप्नुवन्ति।।

(धम्मादो) धर्म का फल से (केचित्) कोई (माणुससोक्खाइं) मनुष्य गति के सुखों को (देवसोक्खाइं) कल्पवासी देवों के सुखों को (पावंति) प्राप्त करते हैं (च) और (केई) कोई (अव्वावाहमणोवमअणंत सोक्खं) अव्याबाध, अनुपम, अनंत सुख को (पावंति) प्राप्त करते हैं।

धर्म के कारण कुछ लोग मनुष्य सम्बन्धी सुख (ज्ञान, बुद्धि, रूप, बल आदि) कोई कल्पवासी देवों के सुखों को और कुछ लोग (विशुद्ध-आत्मा) अव्याबाध, अनुपम और अनन्त सुखों को प्राप्त हैं अर्थात् शुभ धर्म परिणत आत्मा से अनन्त वैभव, रूप, बल, धन आदि प्राप्त करते हैं और शुभ से रहित विशुद्ध धर्म परिणत आत्मा सिद्ध सुख को (अनन्त चतुष्टय को) प्राप्त होतीं हैं।

तम्हा हु सव्वधम्मा परिक्खयव्वा णरेण कुसलेण।
सो धम्मो गहियव्वो जो दोसेहिं विवज्जिओ विमलो।।१४।।
तस्माद्धि सर्वधर्माः परीक्षितव्या नरेण कुशलेन।
स धर्मो गृहीतव्यो यो दोषैर्विवर्जितो विमलः।।

(तम्हा) इसलिए (हु) निश्चित रूप से (कुसलेण नरेण) चतुर मानव के द्वारा (सव्वधम्मा) सभी धर्मों की (परिक्खयव्वा) परीक्षा की जाना चाहिए तथा (सो) वह (धम्मो) धर्म (गहियव्वो) ग्रहण करना चाहिए (जो) जो (दोसेहिं विवज्जिओं) दोषों से रहित (विमलो) निर्मल हो।

इसलिए चतुर मनुष्य का कर्तव्य है कि सभी धर्मों की बुद्धिमता से परीक्षा करे तथा सब धर्मों में जो धर्म निर्दोष, निर्मल हो उसको ग्रहण करें।



जत्थ वहो जीवाणं भासिज्जइ जत्थ अलियवयणं च।
जत्थ परदव्वहरणं सेविज्जइ जत्थ परंगणं।।१५।।
बहुआरम्भपरिग्गहगहणं संतोसवज्जियं जत्थ।
पंचुंबरमहुमंसं भक्तिखज्जइ जत्थ धम्मम्मि।।१६।।
डंभिज्जइ जत्थ जणो पिज्जइ मज्ज च जत्थ बहुदोसं।
इच्छंति सो वि धम्मो केइ य अण्णाणिणो पुरिसा।।१७।।
यत्र वधो जीवानां भाष्यते यत्रालीकवचनं च।
यत्र परद्रव्यहरणं सेव्यते यत्र परांगना।।
बव्हारम्भपरिग्रहग्रहणं सन्तोषवर्जितं यत्र।
पंचोदुम्बरमधुमांसानि भक्ष्यंते यत्रधर्मे।।
दम्भ्यते यत्र जनः पीयते मद्य च यत्र बहुदोषं।
इच्छन्ति तमपि धर्म केचिच्च अज्ञानिनः पुरुषाः।।

(जत्थ) जहाँ (जीवाणं) जीवों का वध किया जाता है। (च) और (जत्थ) जहाँ (अलियवयणं) असत्य वचन (भासिज्जइ) बोले जाते हैं, (जत्थ) जहाँ (संतोषवज्जिय) संतोष को छोड़कर (परदव्वहरण) परद्रव्य का हरण किया जाता है (जत्थ धम्माम्मि) जिस धर्म में (पंचुंबरमहुमंसं) पाँच उदम्बर फल, मधु व माँस को (भक्तिखज्जइ) खाया जाता है (जत्थ) जहाँ (जणो) मनुष्य (डंभिज्जइ) दंभ करता है (च) और (जत्थ बहुदोसं) जिसमें बहुत दोष हैं ऐसे (मज्ज पिज्जइ) मद्य को पीता है (च) और (सो वि) उसको भी (केइ) कोई (अण्णाणिणो) अज्ञानी (पुरिसा) पुरुष (धम्मो) धर्म (इच्छंति) कहते हैं।

जिस थान में (प्रदेश में) जीवों का वध किया जाता है, असत्य वचन पूर्वक भाषण किया जाता है, बहु आरम्भ परिग्रह ग्रहण और पंच उदुम्बर फल, मधु, मांस का भक्षण किया जाता है, मनुष्य दम्भ भरते हैं (उन्मत्त होते हैं) बहु दोष युक्त मद्य (शराब) पी जाती है, किन्हीं अज्ञानी पुरुषों का यही धर्म है, जो ऐसी इच्छा करते हैं।

जइ एरिसो वि धम्मो तो पुण सो केरिसो हवे पावो।
जइ एरिसेण सग्गो तो णरयं गम्मए केण।।१८।।
यद्येतादृशोऽपि धर्मस्तर्हिं पुनः तत्कीदृशं भवेत्पापम्।
यद्येतादृशेन स्वर्गः तर्हि नरके गम्यते केन।

(जइ) यदि (एरिसो वि धम्मो) इस प्रकार पाप क्रियाओं में भी धर्म है (तो पुण) तो फिर (पावो केरिसो हवे) पाप कैसा होता है। (जइ) यदि (एरिसेण) ऐसी पाप क्रियाओं से (सग्गो) स्वर्ग मिलता है (तो) तब (णरयं) नरक को (केण) किससे (गम्मए) जाता है।

विचार कीजिए यदि इस प्रकार हिंसादि पाप क्रियाओं के करने तथा मद्य, मांस और मधु का सेवन करने से भी धर्म होता है तो बताइये! पाप किससे होता है? यदि इस प्रकार की क्रियाओं से स्वर्ग की प्राप्ति होती है तो फिर नरक किससे होता है?

जो एरिसियं धम्म किज्जइ इच्छेइ सोक्खं भुंजेउं।
वावित्ता णिंबतरुं सो इच्छइ अंबफल्लाहं।।१९।।
य एतादृशं धर्मं करोति इच्छति सौख्यं भोक्तुम्।
उप्त्वा निम्बतरुं स इच्छति आम्रफलानि।

(जो) जो (एरिसिय) इस प्रकार (धम्मं) धर्म को (किज्जइ) करता है (और) (सोक्खं) सुख (भुंजेउं) भोगने के लिए (इच्छेइ) इच्छा करता है। (सो) वह (णिंबतरुं वावित्ता) निम्बवृक्ष को बो करके (अंबफल्लाइं इच्छइ) आम्र-फल की इच्छा करता है।

यहाँ आचार्य चेतावनी देते हुए कह रहे हैं कि इस प्रकार पाप क्रियाओं को ही धर्म मानकर कोई धर्म करता है और उस धर्म से सुख की



प्राप्ति चाहता है, वह मानव निम्ब को बोकर आम्रफल की इच्छा करता है अर्थात् कड़वी नीम को बोकर कोई आम्रफल नहीं पा सकता है। उसी प्रकार पाप क्रियाओं में धर्म मानकर उस धर्म से सुख चाहने वाला कभी भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता है। किसी कवि ने कहा-

कर बुराई सुख चाहे, कैसे पावे कोय।
बोए पेड़ बबूल का, आम कहाँ से हाये।।

और भी.....

क्यारी बाँधी केसर की, अन्दर बोया प्याज।
पानी दिया गुलाब का, आखिर प्याज ही प्याज।।

धम्मोत्ति मण्णमाणो करेइ जो एरिसं महापांव।
सो उप्पज्जइ णरए अणेयदुक्खावहे भीमे।।२०।।
धर्म इति मन्यमानः करोति यः एतादृशं महपापम्।
स उत्पद्यते नरके अनेकदुःखपथे भीमे।

(जो) जो (एरिसं) इस प्रकार (महापावं) महापाप को (धम्मोत्ति) धर्म इस प्रकार (मण्णमाणो) मानकर (करेइ) करता है (सो) वह (अणेयदुक्खावहे भीमे णरए) नाना प्रकार के दुःखों के मार्ग जन्यभयानक नरक में (उप्पज्जइ) उत्पन्न होता है।

जो इस तरह से धर्म मानता हुआ महापाप को करता है, वह नाना दुःख से युक्त पथ के तीव्र नरक में उत्पन्न होता है।

तत्थुप्पण्णं संतं सहसा तं पक्खिऊण णेरइया।
सरिऊण पुव्ववइरं धावंति समंतो भीमा।।२१।।
तत्रोत्पन्न सन्तं सहसा तं प्रेक्ष्य नारकाः।
स्मृत्वा पुर्ववैरं धावन्ति समन्ततो भीमाः।।

(तत्थुप्पण्णं संतं) वहाँ उत्पन्न हुए (तं) उसको (पक्खिऊण) देखकर (णेरइया) अन्य नारकी (पुव्ववइरं सरिऊण) पूर्व वैर को स्मरण करके (समंतदो) चारों ओर से (भीमा) तेजी से (धावंति) दौड़ते हैं।

वहाँ उत्पन्न हुए उस नारकी को देखकर अन्य नारकी कुअवधिज्ञान

से पूर्व भव के बैर का स्मरण करके चारों ओर से उस पर टूट पड़ते हैं अर्थात् भयानक हंटर, शस्त्र आदि लेकर उसे मारने के लिए दौड़ते हैं।

**असिसुफरसमोग्गरसत्तितिसूलेहिं सेल्लकोंतेहिं।**
**कोहेण पज्जलंता पहरंति सरीरयं तस्स।।२२।।**
**असिसुफरशमुदगरशक्तित्रिशूलैः शेल्लकुन्तैः।**
**क्रोधेन प्रज्वलन्तः प्रहरन्ति शरीरकं तस्य।।**

**(और) (कोहेण) क्रोध से (पज्जलंता) जलते हुए (असिसुफरसमोग्गरसूलेहिं) तलवार, फरसा, मुदगर, शक्ति, त्रिशूलों के द्वारा (तथा) (सेल्लकोंतेहिं) तीक्ष्ण भाला आदि के द्वारा (तस्स) उस नारकी के (सरीरयं) शरीर को (प्रहरन्ति) प्रहार करते हैं/मारते हैं।**

**वहाँ भयानक नरकों में रहने वाले नारकी जीव स्वभाव से ही क्रूर रहते हैं। वे जन्म-जात तात्कालिक नारकी को देखकर क्रोधाभिभूत हो उसके शरीर पर तलवार आदि तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार करते हैं।**

**गद्दापहारविद्धो मुच्छं गंतूण महियले पडइ।**
**अइकंटएहिं तत्थ विभिज्जइ तिक्खेहिं सव्वंगं ।।२३।।**
**गदाप्रहारविद्धःमूर्च्छा गत्वा महीतले पतति।**
**अतिकंटकैः तत्र विभिद्यते तीक्ष्णैः सर्वांगम्।।**

**(तत्थ) वहाँ नरक में उसके (सव्वंग) सर्वांग को (अइतिक्खेहिं) अति तीक्ष्ण (कंटएहिं) काँटों के द्वारा (विभिज्जइ) भेदा जाता है। (गद्दापहारविद्धो) गदा आदि के प्रहार से (मुच्छं) मूर्च्छा को प्राप्त होकर (महियले) भूमि तल पर (पडइ) गिरता है।**



**(वह नारकी) गदा प्रहार से घायल मूर्च्छा को प्राप्त होकर भूमितल पर गिर जाता है फिर वहाँ उसके सभी अंगों को अति तीक्ष्ण दुःखोत्पादक शस्त्र से भेदा जाता है।**

**लद्धूण चेयणाए पुणरवि चिंतेइ किं इमे सव्वे।**
**पहरंति मज्झ देहं जपंता कडुयववयणाइं।।२४।।**
**लब्ध्वा चेतनां पुनरपि चिन्तयति किं इमे सर्वे।**
**प्रहरन्ति मम देहं जल्पन्तः कटुक वचनानि।।**

**(पुणरवि) पुनः (वह नारकी) (चेयणाए) चेतना को (लहूण) प्राप्त करके (चिंतेइ) विचार करता है कि (इसे सव्वे) ये सब (मज्झ) मेरे (देहं) शरीर को (किं पहरंति) प्रहार क्यों करते हैं? (किं कडुयववयणाइं जपंता) क्यों कटुक वचन बोलते हुए?**

**फिर वह नारकी चेतना को प्राप्त होकर सोचता है कि ये सभी कटुक वचन बोलते हुए मेरे शरीर पर क्यों प्रहार करते हैं।**

**देवयपियरणिमित्तं मंतोसहिजागभयणिमित्तेण।**
**जं मारिया वराया अणेय जीवा मए आसि।।२५।।**
**देवतापितृनिमित्तं मंत्रोषधियागभयनिमित्तेन।**
**ये मारिता वराका अनेकजीवा मया आसन्।।**
**जं पारिमाणविरहिया परिग्गहा गिण्हिया मए आसि।**
**जं खायं महुमंसं पंचुबर-जिब्भलुद्धेण।।२६।।**
**यत् परिमाणविरहिताः परिग्रहाः ग्रहीता मया आसन्।**
**यत् खादितं मधुमांसं पंचोदुबराणि जिव्हालुब्धेन।।**
**जं भासियं असच्चं तेणिक्कज्जं मए कयं आसि।**

जं तिलमेंत्तसुहत्थं परदारं सेवियं आसि।।२७।।
यद्भाषितं असत्यं स्तेनकृत्यं मया कृतं आसीत्।
यत्तिमात्रसुखार्थ परदाराः सेविता आसन्।।
जं पीयं सुरयाणं जं च जणो डंभिओ मए सव्वो।
तस्स हु पावस्स फलं जं जायं एरिसं दुक्खं।।२८।।
यत्पीता सुरा पानं यश्च जनो दंभितों मया सर्वः।
तस्य हि पापस्य फलं यज्जातं एतादृशं दुःखम्।।

(जं) जो (मए) मेरे द्वारा (देवयपियरणिमित्तं) देवता, पितर के निमित्त, (मंतोसहिजागभयणिमित्तेण) मन्त्र, औषधि, यज्ञ व भय के निमित्त से (अणेय वराया जीवा) अनेक निरीह प्राणी (मारिया आसि) मारे गये थे।।२५।।

(जं) जो (मए) मेरे द्वारा (परिमाण-विरहिया) परिमाण से रहित (परिग्गहा गिण्हिया) परिग्रह ग्रहण किया गया (आसि) था (जं) जो (जिब्भलुद्धेण) जिव्हा की लोलुपता से (महुमंसं पंचुबर) मधु-मांस, पांच-उदम्बर फल (खायं) खाये गये थे।।२६।।

(जं) जो (मए) मैंने (असच्चं भासियं) असत्य भाषण किया (तेणिक्कज्जं) चोरी करके (कयं आसि) कार्य किया। (जं) जो (तिलमेत्तसुहत्थं) तिलमात्र सुख के लिए (परदारं सेवियं) परस्त्री का सेवन किया (आसि) था।।२७।।

(जं) जो (मए) मेरे द्वारा (सुरयाणं पीयं) सुरापान को पीया गया (च) और (जं) जो (हु) निश्चय से (सव्वो) यह सब (तस्स पावस्स फलं) उस पाप का फल है (जं) जो (एरिसं दुक्खं) इस प्रकार का दुःख (जायं) उत्पन्न हुआ है।।२८।।

नरक के भयानक दृश्य को देखकर नवजात नारकी विचार करता है कि मैंने पूर्व भव में देवता, पितर (श्राद्ध आदि में) के प्रयोजन मंत्र औषधि,



**यज्ञ व भय के निमित्त अनेक निर्दोष प्राणियों की हिंसा की, करवाई तथा आवश्यकता से अधिक परिग्रह का संचय किया, जिव्हा इन्द्रिय की लम्पटता में लिप्त हो मद्य, मांस, मधु, बड़, पीपल, पाकर, ऊमर, कठूमर आदि अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण किया और असत्य वचनालाप किया, चोरी करके कार्य बनाया, किचिंत सुख के लिए परस्त्री का सेवन किया, घमंड में चूर होकर अपने में भूला रहा है। यह सब दुःख जो आज मुझे प्राप्त हुए हैं इन्हीं पापों का यह फल है।**

**बिना कारण के कभी कोई कार्य नहीं होता। जैसा किया है वैसा फल भोगना ही पड़ता है।**

**णाऊण एव सव्वं पुव्वभवे जं कयं महापावं**
**अइतिव्ववेयणाओ असहंतो णासए सिग्घं।।२९।।**
**ज्ञात्वैवं सर्वं पूर्वभवे यत्कृत महापापं।**
**अतितीव्रवेदनां असहमानः नश्यति शीघ्रं।।**

**(जं) जो (महापावं) महापाप (पुव्वभवे) पूर्वभव में (जं कयं) मेरे द्वारा किये गये (सव्वं) सब (तस्सेव फलं) उसी का फल है (एव णाऊण) इस प्रकार जानकर (अइतिव्ववेयणाओ) अतितीव्र वेदना को (असहंतो) सहन नहीं करता हुआ (णासए सिग्घं) तेजी से भागता है।**

**नरक की तीव्रता वेदनाओं का कारण क्या है, ये मुझे क्यों प्राप्त हुई हैं? चिन्तन करने पर, वह विचारता है- मुझ पापी ने पूर्वभव में जो महापाप किये हैं यह उसी का फल है। तथापि असह्य तीव्र वेदना को सहन करने में असमर्थ वह नारकी शीघ्रता से भागता है।**

**सो एवं णासंतो णरइयभयेण असरणो संतो।**

**पविसइ असिपत्तवणे अणेयदुक्खावहे भीमे।।३०।।**

स एवं नश्यन् नारकभयेन अशरणः सन्।
प्रविशति असिपत्रवने अनेकदुःखपथे भीमे।।

(सो) वह (एवं) इस प्रकार (णासंतो) भागता हुआ (णरइयभयेण) नारकियों के भय से (असरणो संतो) अशरण हुआ (अणेय दुक्खावहे भीमे) अनेक दुःखों के मार्ग ऐसे भयानक (असिपत्तवणे) असिपत्रवन में (पविसइ) प्रवेश करता है।

नारिकयों की दुष्ट प्रवृत्तियों से भयभीत हो भागता हुआ, वह चारों तरफ शरण की खोज में दृष्टि दौड़ाता है, पर वहाँ कोई शरण नहीं जान, अशरण हुआ अनेक दुःखों के मार्ग वाले भयानक घनघोर असिपत्र वन में प्रवेश करता है।

तत्थ वि पडंति उवरिं फलाइं जड़ाइं असहणिज्जाइं।
लग्गंति जत्थ गत्ते सइ चुण्णं तत्थ कुव्वंति।।३१।।
तत्रापि पतन्ति उपरि फलानि जटानि असहनीयानि।
लगंति यत्र गात्रे सकृच्चूर्णं तत्र कुर्वन्ति।।

(तत्थ वि) वहाँ भी (असहणिज्जाइं) असहनीय ऐसे (जड़ाइं फलाइं) कठोर फलों के गुच्छे (समूह) (गत्ते उवरिं) उसके शरीर के ऊपर (पडंति) गिरते हैं (जत्थ लग्गंति) जो शरीर को लगते हैं, पीड़ित करते हैं (तत्थ सइं चुण्णं) वहीं से एक बार तो शरीर का चूर्ण-चूर्ण (कुव्वंति) कर देते हैं।

नारकियों के द्वारा प्रदत्त पीड़ा से भयभीत वह नारकी सुख प्राप्त्यर्थ असिपत्रवन में प्रवेश करता है, पर वहाँ भी असह्य कठोर फलों के गुच्छे उसके शरीर पर गिरते हैं और शरीर को एक बार तो चकनाचूर कर देते हैं।



अहो! आश्चर्य है कि इतनी पीड़ा होने पर भी वह शरीर पुनः जुड़ जाता है। उन नारकी की असमय में मृत्यु नहीं होती। आचार्य श्री उमा स्वामी जी ने भी लिखा है.....

''औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्त्यायुषोऽनपवर्त्यायुषः''

उपपाद जन्म वाले देव नारकियों की अकाल मृत्यु नहीं होती है। फलतः नारकी का शरीर टुकड़े-टुकड़े करने पर भी ''पारावत्'' पुनः जुड़ जाता है।

पत्ताइं पडंति तहा खंडयधारव्व सुट्ठुतिक्खाइं।
ताइं वि छिंदंति पुणो अंगोवंगाइं सव्वाइं।।३२।।
पत्राणि पतन्ति तथा खड्गधारावत् सुष्ठु तीक्ष्णानि।
तन्यापि छिन्दन्ति पुनः अंगोपांगनि सर्वाणि।

(तहा) तथा (खंडयधारव्व) तलवार की धार के समान (सुट्ठुतिक्खाइं) अति पैने, तीक्ष्ण (पत्ताइं) पत्ते (पडंति) उसके शरीर पर गिरते हैं (ताइं त्रि पुणो) वे पत्ते भी पुनः (सव्वाइं अंगोवंगाइं) सारे अंग-उपांग को (छिंदंति) छेदते हैं।

''सेमरतरुजुतदलअसिपत्र, असि ज्यों देह विदारै तत्र'' जिस प्रकार तीक्ष्ण तलवार शरीर का विदारण कर देती है, नाक-कान व हाथ-पाँव वगैरह को छेद देती है। वैसे ही वहाँ नरकों में वृक्षों के पत्ते इतने तीक्ष्ण होते हैं कि शरीर पर गिरते ही अंग-उपांग को काट डालते हैं।

.ीसरिऊण सो तत्थ वि असहंतो एरिसाइं दुक्खाइं।

**वेएण धावमाणो पव्वयसिहरं समारुहइ।।३३।।**

निः सृत्य स ततोऽपि असहमान एतादृशानि दुःखानि।
वेगेनधावन् पर्वत शिखरं समारोहित।।

(सो) वह (एरिसाइं दुक्खाइं) इस प्रकार के दुःखों को (असहंतो) सहन नहीं करता हुआ (तत्थ वि) वहाँ से भी (णीसरिउण) निकलकर (वेएण धावमाणो) तेजी से दौड़ता हुआ (पव्वयसिहरं) पर्वत के शिखर पर (समरूहइ) चढ़ जाता है।

''फल भुंजत जिय दुख पावै'' यह जीव हँसते-हँसते पाप बांधता है, पर जब कर्मोदय सामने आता है तो असह्य वेदना से महादुःख पाता है। वह नारकी असिपत्र वन में पत्र व फलों की मार-काट रूप पीड़ा से व्याकुल चित्त हो वहाँ से भी भागकर पर्वत के शिखर पर चढ़ जाता है।

तत्थ वि पव्वयसिहरे णाणाविहसावया परमभीमा।
तिक्खणहकुडिलदाढ़ा खादंति सरीरयं तस्स।।३४।।
तत्रापि पर्वतशिखरे नानाविघशावकाः परमभीमाः।
तीक्षणनखकुटिलदाढ़ा खादन्ति शरीरं तस्य।।

(तत्थ वि) वहाँ भी (पव्वयसिहरे) पर्वत के शिखर पर (तिक्खणहकुडिलदाढ़ा) तीक्ष्ण-नख व कुटिल दाढ़ों वाले (परमभीमा) दारुण त्रास देने वाले ऐसे (णाणाबिहसावया) विभिन्न प्रकार के वन्यपशुओं के बच्चे (तस्स सरीरयं) उसका शरीर (खादंति) खाते हैं।

"पूरव भव में किये पाप जब उदय जीव के आते हैं।
घोर विपत्ति उन पर पड़ती जहाँ कहीं वे जाते हैं।।"



**पूर्व पापों का फल जीव कहीं भी जावे, अवश्य भोगना पड़ता है। वह नारकी दुःख से बचने के लिए पर्वत के शिखर पर चढ़ जाता है पर वहाँ भी दुष्ट जानवरों ने उसका पीछा करना प्रारम्भ कर दिया तथा छोटे-छोटे वन्य पशुओं के बालक उसके शरीर को खाने लगते हैं।**

**तेसिं भएण पुणो धावंतो उत्तरेइ भूमीए।**
**गच्छइ वेयरणीए तिण्हाए पीडिओ संतो।।३५।।**
**तेषां भयेन पुनः धावन उत्तरति भूमौ।**
**गच्छति वैतरण्यां तृष्णया पीड़ितः सन्।।**

**(तेसिं) उन नारकियों के भय से (पुणो) वह नारकी पुनः (धावंतो) दौड़ता हुआ (भूमीए उत्तरेइ) उस पर्वत से उतरकर भूमि पर आता है तथा (तिण्हाए पीड़िओं संतो) तृष्णा से पीड़ित होता हुआ (वेयरणीए) वेतरणी नदी में (गच्छइ) जाता है।**

**पर्वत शिखर पर भी नारकियों के द्वारा दी गई पीड़ा से भयभीत हो वह वहाँ से भूमि में उतर आता है और प्यास की वेदना से व्याकुल हुआ वैतरणी नदी पर पानी पीने के लिए जाता है। आगम में कहा है कि नरकों में जीव को प्यास इतनी लगती है कि ''सिन्धुनीर तै प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय'' समुद्र का सारा पानी पी ले, फिर भी प्यास नहीं बुझती है, पर कर्म की विचित्रता देखिये वहाँ एक बूँद भी पानी पीने को नहीं मिलता है।**

**सुक्को विविज्झकंठो तत्थ जलं गेण्हिऊण पिवमाणो।**
**उण्हेण तेण डज्झइ हत्थम्मि मुहम्मि ओट्ठिम्मि।।३६।।**
**शुष्कः विध्यकण्ठः तत्र जलं गृहीत्वा पिवन्।**
**उष्णेन तेन दह्यते हस्तेषु मुखे ओष्ठे।।**

(तत्थ) वहाँ (जलं गेण्हिऊण) जल को ग्रहण करके (पिवमाणो) पीते हुए (तेण उण्हेण) उस जल की उष्णता से (हत्थम्मि मुहम्मि ओठम्मि) उसके हाथ, मुँह और ओंठ (डज्झइ) जल जाते हैं और (सुक्को विविज्झकंठो) कंठ अवरुद्ध होकर सूख जाते हैं।

तृषा शान्त्यर्थ वैतरणी नदी के जल को जैसे ही वह नारकी पीता है तत्क्षण उसके हाथ-पैर-ओंठ जल जाते हैं और कंठ रूध जाता है सूख जाता है।

भुक्खाए संतत्तो अलहंतो किंचि अण्णमाहारं।
वेयरणीए कूले गिाण्हियव्वा मट्टियं खाइ।।३७।।
बुभ्रुक्षया संततो अलहंतो किंचि अण्णमाहारम्।
वैतरण्याः कूले गृहीत्वा मृत्तिकां खादति।

(भुक्खाए) भूख से (संतत्तो) संतप्त (किंचि) थोड़ा भी (अण्णमाहारं) अन्न-आहार को (अलहंतो) नहीं प्राप्त होता हुआ वह (वेयरणीए कूले) वैतरणी के तट पर की (मट्टियं) मिट्टी को (गिण्हियव्वा) उठाकर (खाइ) खाता है।

"तीन लोक को नाज जु खाय, मिटे न भूख कणा न लहाय" नरकों में नारकियों को असातावेदनीय के तीव्र उदय से इतनी अधिक भूख लगती है कि वे चाहते हैं कि तीन लोक का सारा अनाज मैं खा लूँ, पर वहाँ खाने के लिए उन्हें अन्न का एक दाना भी नहीं मिलता हैं। तो वह नवजात नारकी भूख से व्याकुल हो अन्नहार की चेष्टा में चारों ओर दृष्टिपात करता है पर उसे अन्न का लाभ नहीं होता है तो वह वहाँ नदी के किनारे की मिट्टी खाकर अपनी क्षुधा शान्त करना चाहता है पर भूख शान्त नहीं होती है।



लाए पुणो वि डज्झइ लोहंगारेहिं पज्जलंताए।
घोराए कडुआइ अपूइयमयसाणगंधाए।।३८।।
तया पुनरपि दह्यते लोहांगरैः प्रज्वलन्त्या।
घोरया कटुकपूतिमयश्वगन्धया।।

(घोराए) अत्यधिक (पुणो वि) तथा (ताए पज्ज्लंताए) उन जलते हुए (लोहंगादेहिं) लोहे के अंगारों से (डज्झइ) जल जाता है। (कडुआइअ-पुउय-मय-साण-गंधाए) पीड़ादायक पीपमय (दुर्गन्ध पुरु) श्वाँन (कुत्ते) की गंध से।

वह अत्यधिक पीड़ादायक पीपमय श्वाँन की गंध से तथा जलते हुए लोहे के अंगारों से जल जाता है।

सो एवं अच्छंतो णइकूले पिच्छिऊण णारइया।
कडुयाइं जंपमाणा पुणरावे धावंति पाविट्ठा।।३९।।
तमेवं तिष्ठतं नदीकुले दृष्टा नारकाः।
कटुकानि जल्पन्तः पुनरपि धावन्ति पापिष्ठाः।।

(एवं) इस तरह (सो) वह (अच्छंतो) ठहरा हुआ (णइकूले) नदी के किनारे पर (चिच्छिऊण) देखकर (पुणरवि) पुनः (पाविट्ठा णारइया) पापी नारकी (कडुयाइं) कर्कश (जपमाणा) बोलते हुए (धावंति) दौड़ते हैं।

पापी नारकी नदी के किनारे पर ठहरे उस नारकी को देखकर उसे कर्कश वचन बालते हुए उसकी ओर दौड़ते हैं।

वेएण वहंताए पतत्ततेलव्व पज्ज्लंताए।
वेयरणीए मज्झे चप्पंति अणप्पयवसिया हु।।४०।।
वेगेन वहन्त्याः प्रतप्ततैलवत् प्रज्वलन्तयाः।

वैतरण्यां मध्ये प्रविशन्ति अनात्मवशिका हि।।

दुःखों की तीव्र वेदना रूप आर्तध्यान से पीड़ित वह (अण्णवसिया हु) में पराधीनतावश (वेएण) वेग से (वहंताए) प्रवाहित (पतत्ततेलव्व पज्जलंताए) गर्म-गर्म तेल के समान तप्तायमान (वेयरणीए मज्झे) वैतरणी नदी के अन्दर (चप्पंति) पकड़ लेते हैं।

संसारी जीव स्व-वश हो जरा भी संकट, उपसर्ग दुःखादि झेलना नहीं चाहता। यम-नियम को भी विपत्ति समझकर ऐश-आराम की बातें कहता है। पर पराधीनता में क्या-क्या नहीं सहता? अर्थात् वह नारकी दुःखों से प्रतिपल बचना चाहता है, पर एक समय भी उसे वहाँ चैन नहीं है। पराधीनतावश वह गर्म तप्तायमान तैलवत ऐसी नदी के मध्य प्रवेश कर जाता है।

तत्थ वि पावइ दुक्खं डज्झंतो पज्जलंतसलिलेण।
छोड़ीजंतसरीरो तिक्खाहिं सिलाहिं घोराहिं।।४१।।
तत्तापि प्राप्नोति दुःखं दहन् प्रज्वलितसलिलेन।
स्पृष्टवंतशरीरः तीक्ष्णाभिः शिलाभिः घोराभिः।।

(तत्थ वि) वहाँ भी (पज्जलंतसलिलेण) तप्तायमान उष्ण जल से (डज्झंतो) जलता हुआ तथा (तिक्खाहिं घेराहिं सिलाहिं) तीक्ष्ण बड़ी-बड़ी भयानक शिलाओं के (छोड़ीजंत) स्पर्श से (सरीरो) शरीर (डज्झंतो) जलता हुआ (दुक्खं पावइ) दुःख को प्राप्त होता है।

जैसे ही वह दुख से बचने के लिए नदी में प्रवेश करता है वैसे ही वहाँ के उबलते हुए गर्म जल व तीक्ष्ण, भयंकर चट्टानों की चोट से पीड़ित होता हुआ भयानक दुःखों को प्राप्त करता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो वह



बड़वानल की लपटों में झुलसा हुआ धधक रहा है, ऊपर से तीक्ष्ण बड़ी चट्टानों की चोट उसे ठोंक-ठोंक कर पुकार रही है" समझो भैय्या! पूर्व में किया है उसी का फल भोगना है। अब भी समझो, पापों को छोड़ो,, सचेत कर रही है।

सो एवं बुड्डंतो कहवि किलिसेहि तत्थ णीसरए।
णीसरिओ वि हु संतो धरंति बंधंति णेरइया।।४२।।
स एवं ब्रुबन् कथमपि क्लेशैः ततो निःसरति।
निःसृतमपि हि सन्तं घरन्ति बध्नन्ति नारकाः।।४२।।

(सो) वह (एवं) इस प्रकार (किलिसेहि बुडंतो) क्लेशों से वा तीव्र आर्त-दौद्र ध्यान व पीड़ा चिन्तन से दुःखी होता हुआ (कह वि) किसी भी उपाय से (तत्थ णीसरए) वहाँ से निकलता है (णीसरिओ वि हु संतो) परन्तु, अहो कर्म वैचित्रय कि जैसे ही निकलता है, तत्काल ही (णेरइया धरंति बंधति) अन्य नारकी उस पर झपटते हैं तथा कोई बांधते व कोई पकड़ते हैं।

वहाँ वैतरणी नदी में वह नारकी तीव्र आर्त-रौद्रध्यान रूप संक्लेश परिणामों से पीड़ित हुआ किसी भी प्रकार प्रयत्न करके नदी से बाहर निकलता भी है तो अन्य नारकी उस पर ऐसे झपटते हैं जैसे एक गिद्ध मांस के टुकड़े के लिए। कोई बांधता है, कोई पकड़ता है और कोई मारता है।

जस्स रडंतस्स पुणो उण्हाए णि क्खिवंति सिगदाए।
उद्धरिऊण सदेहं णासइ तं दुक्खमसहंतो।।४३।।
तं रुदन्तं पुनः उष्णया निखनन्ति सिकतायाम्।
उत्थाय स्वदेहं नाशयति तं दुःखमसहमानः।

(जस्स रडंतस्स) उस दुख की वेदना से पीड़ित वह रोता-चिल्लता है (पुणो) पुनः (उद्धरिऊण) उठकर (सदेहं) अपने शरीर को (उण्हाए णिक्खणंति सिगदाए) गर्म उफनती बालू रेत में (णासइ) फेंकता है (तं दुक्खमसहंतो) वह दुःख असह्य है। अर्थात् गर्म बालू में दौड़ता है, वह असह्य वेदना है।

उस दुःख की वेदना से संक्लेशित हुआ वह असह्य वेदना से पीड़ित हुआ, दुःखों से बचने के लिए गर्म उफनती रेत में भागता है, पर जलने से बचने के लिए अग्नि में हाथ डालने वाला कभी भी बच नहीं सकता। वही स्थिति इसकी वहाँ होती है।

पुणरवि धरंति णेरइया तस्स पावयम्मस्स।
मस्सरमछियं करंति हु छुहंति तह खारयंकम्मि।।४४।।
पुनरपि धरन्ति भीमा नारकास्तं पापकर्माणं।
मत्सर-मत्सिरं करंति हु क्षुभन्ति तथा क्षारयंके।।

(तस्स पावयम्मस्स) उस नारकी के पूर्वकृत पापकर्म के फल से (ते भीमा णेरइया) वे दुर्जन भयंकर नारकी (पुणरवि) फिर से (धरंति) उसे पकड़ते हैं और (मस्सरमछियं करंति) उससे मात्सर्य घृणा करते हैं (छुहंति हु तह खारयंकम्मि) मानो कि वे नारकी लवण समुद्र को ही स्पर्श कर रहे हो।

लवण समुद्र का जल अति खारा होता है, वे नारकी उससे इस प्रकार घृणा, द्वेष और मात्सर्य करते हैं मानो वे लवण समुद्र को ही छूते हों।

णीसरिऊण वराओ णासंतो खारयंकमड्ढुओ।
पुव्वुत्तकमेण पुणो धरंति ते तस्स णारइया।।४५।।



निःसृत्य वराकः नश्यन् क्षारयंक-मर्दकः।
पूर्वोक्तक्रमेण पुनः धरन्ति ते तं नारकाः।।

(वराओ) बेचारा (खारयंकमड्ढओ) क्षार से लिपटा हुआ वहाँ से (णीसरिऊण) निकलकर (णासंतो) क्षार को दूर करते हुए (तस्स) उस नारकी के लिए (ते णारइया) वे नारकी (पुणो) बार-बार (पुव्वुत्तकमेण) पूर्वोक्त क्रम से (धरंति) पकड़ लेते हैं।

वह लवण के लेप से संतप्त बेचारा नारकी बाहर निकल कर जैसे ही भागता है, वे नारकी पुनः उसको पूर्वकथित क्रम से पकड़ लेते हैं।

मरणभयभीरूयाणं जीवाणं जो हु जीवियं हरइ।
णरयम्मि पावयम्मो पावइ तह बहुविहं दुक्खं।।४६।।
मरणभयभीरूणां जीवानां यो हि जीवितं हरति।
नरके पापकर्मा प्राप्नोति तथा बहुविधं दुःखम्।।

(हि) निश्चय से (यो) जो (मरणभयभीरूयाणं) मृत्यु के भय से भयभीत (जीवाणं) जीवों के (जीवियं हरइ) प्राणों का नाश करता है वह (पावकम्मा) पापी, पापकर्म के फल से (नरयम्मि) नरक में (तह बहुविहं दुक्खं) बहुत प्रकार के दुक्खों को (पावइ) प्राप्त करता है।

संसार में प्रत्येक प्राणी मरण से डरता है, चींटी से लेकर हाथी तक सभी प्राणियों को अपना जीवन प्यारा होता है। ऐसे मरणभीरू जीवों का शिकार किया हो, मांसभक्षणार्थ प्राणों का वियोग किया हो, बलि चढ़ाया हो, हवन-यज्ञ में इनका होम किया हो तो इस महापाप के फल से जीव नरक में जाता है और वहाँ उसी प्रकार के भयानक दुःखों को प्राप्त होता है।

पीलंति जहा इक्खू जंते छुहिऊण तस्स अवसस्स।
कुव्वंति चुण्ण-चुण्णं सव्वसरीरं मुसंढीहिं।।४७।।
पेलयन्ति यथा इक्षून यंत्रे निधाय तमवशं।
कुर्वन्ति चूर्ण चूर्ण सर्वशरीरं मुशलैः।।

(जहा) जिस प्रकार (जंते छुहिऊण) यन्त्र में रखकर (इक्खू) गन्ना को (पीलंति) पीलते हैं (तहा) उसी प्रकार (तस्स अवसस्स) उस कर्माधीन परतन्त्र नारकी के (सव्वसरीरं) सारे शरीर को (मुसंढीहिं) मुशल के द्वारा (चुण्णं-चुण्णं) चकनाचूर (कुव्वंति) करते हैं।

जैसे पूर्ण गन्ना भी यन्त्र में रखकर पीलने पर चूर-चूर हो जाता है वैसे ही अन्य नारकी उस परवश हुए नवजात नारकी को मूशल के द्वार इस प्रकार पीटते हैं कि उसका सारा शरीर चूर्ण-चूर्ण कर देते हैं।

चक्केहिं करकचेहिं य अंगं फाडंति रोवमाणस्स
सिंचंति पावयम्मा पुणरवि खारेण सलिलेण।।४८।।
चक्रैः क्रकचैश्च अंगं विदारयन्ति रूदत।
सिंचन्ति पापकर्माणः पुनरपि क्षारेण सलिलेन।।

(य) और (चक्केहिं) चक्र के द्वारा (करकचेहिं) करोंत के द्वारा (अंग) अंग को (फाडंति) विदारण करते हैं (रोवमाणस्स पुणरवि) पुनः रोता हुआ वह (खारेण सलिलेण) मानो लवण समुद्र के खारे जल से (पावयम्मा) पापकर्मों को (सिंचतिं) सींचता है।

वे पापकर्मी नारकी उसको चक्र से या करोंत से अंग को फाड़ डालते हैं। उस रोते हुए नारकी के लिए पुनः खारे जल से सींचते हैं अर्थात् बार-बार खारे पानी को डालते है।



चंपति सव्वदेहं तिक्खसलाएहिं अग्गिवण्णाहिं।
णहसंधिपएसेसु य भिंदंति जलंती सूईहिं।।४९।।
छिंदंति सर्वदेहं तीक्ष्णशलाकाभिः अग्निवर्णाभिः।
नख-संधि-प्रदेशेसु च भिंदंति ज्वलंतीभिः सूचीभिः।।

वे नाारकी एक क्षण के लिए भी सुख की श्वांस लेने नहीं देते क्या-क्या करते हैं? देखिये- (अग्गिवण्णाहिं) अग्नि के समान दीप्त लाल-लाल वर्ण की (तिक्खसलाएहिं) तीक्ष्ण शलाकाओं के द्वारा (उसके) (सव्वदेहं) सारे शरीर को (चंपति) छेदते हैं (य) और (जलंती) तेज जलती हुई (सूईहिं) सूचिकाओं के द्वारा (णहसंधिपएसेसु) नख व सन्धि प्रदेशों को (भिदंति) भेदते हैं।

"न रतः इति नारका" जो एक क्षण के लिए भी वात्सल्य से नहीं रहते हैं वे नारकी कहलाते हैं। आपस में क्रूरता की दृष्टि रखते हुए वे नवीन नारकी के सारे शरीर को लाल-लाल तीक्ष्ण शलाकाओं के द्वारा छेदते हैं तथा गर्म लोह सूचिकाओं से नख व संधि प्रदेशों को भेदते हैं, वह बेचारा असह्य वेदना को असहाय हो सहन करता हुआ प्रतिपल वहाँ से छूटना चाहता है पर आयु कर्म तो पूरा भोगना ही पड़ता है।

पाडित्ता भूमीए पाएहि मलंति पावयमस्स।
सिंघाडयाण उवरिं अंगे वेएण लोदंति।।५०।।
पातयित्वा भूमौ पदैः मलन्ति पापकर्माणं।
सिघाटकानामुपरि अंगे वेगेन लोदन्ति।।

(पावयम्मस्स) पापकर्मी के लिए (भूमीए) भूमि पर (पाडित्ता) पटककर (पाएहि) पैरों से (मलंति) रौंद डालते हैं (वेएण) तेजी से (अंग

उपदि) शरीर पर (सिंघाडयाण) संडासी जैसे अस्त्र से (लोदंति) भेदन करते हैं।

पूर्वकृत पापकर्मों के फल स्वरूप पापी नारकी उसे भूमि पर गिराकर पैरों से रौंदते हैं तथा वेग से तिरछे मार्ग के ऊपर उसके अंगों को पीसते हैं।

अलियस्स फलेण पुणो गीवाए चंपिदूण पाएहिं।
तस्स य खणंति जीहा समूला च णारइया।।५१।।
अलीकस्य फलेन पुनः गीवया चंपित्वा पादैः।
तस्य च खनन्ति जिव्हां समूलां हि नारकाः।।

(अलियस्स फलेण) असत्य बोलने के फल से (पुणो) फिर वे (णारइया) नारकी (पाएहिं) पैरों के द्वारा (तस्स) उसके (गीवाए चंपिदूण) शरीर के अंगों को छेदकर (च) और (जीहा समूला खणंति) जिव्हा को तो मूल से ही काट देते हैं।

जो प्राणी झूठ बोलता है, चुगली करता है, गाली-गलौज करता है, वा कटूक भाषण करता है वह उस असत्य वाणी के फलस्वरूप नरक में जाता है। वहाँ अन्य नारकी उसके सारे शरीर के अंगों को पैरों से रौंधते-छेदते हैं तथा जिस इन्द्रिय से पूर्वभव में असत्य बोला था उस जिव्हा इन्द्रिय को पूरा जड़ से ही काट डालते हैं।

खंडति दो वि हत्था तेणिक्कफलेण तिक्खवंसीए।
सूलम्मि छुहंति पुणो णारइया सुट्ठ तिक्खेहिं।।५२।।
खण्डयन्ति द्वावपि हस्तौ स्तैन्यलेन तीक्ष्णवंश्या।
शूलैः स्पर्शयन्ति पुनः नारकाः सुष्ठु तीक्ष्णैः।।



**(तेणिक्कफलेण) चोरी के फल से (णारइया) नारकी (तिक्खवंसीए) तीक्ष्ण बांसों के द्वारा (तस्स) उसके (दो वि हत्था) दोनों हाथों को (खंडति) काट देते हैं (पुणो) फिर (सुट्ठुतिक्खेहिं सूलम्मि) अति पेने नोकदार कांटे उसके शरीर पर (छुहंति) चुभाते हैं।**

**किसी की गिरी हुई, रखी हुई, भूली हुई चीज को बिना दिये उठा लेना चोरी है। इस पाप को करने वाला पातकी घोर नरकों में जन्म लेकर महादुःखों को पाता है। अन्य नारकी उसे ताड़ना देते हैं- देख! देख! पूर्वभव में दूसरे का धन-दौलत इन दोनों हाथों से तू ने लूटा था अब हम तेरे ये दोनों हाथ ही काट देते हैं, बस! तत्काल तीक्ष्ण बांसों के द्वारा उसके दोनों हाथ काट देते हैं और फिर नोकदार तीक्ष्ण त्रिशूलों पर फैंक देते हैं।**

**विचार कीजिए, "फांस तनक सी तन में साले" । यह जीव स्ववश हुआ एक तृण की वेदना को भी सहन नहीं करता जबकि वहाँ नरकों में परवश हुआ निरन्तर मार-काट, कांटे, त्रिशूल, भाला आदि की वेदना को कैसे सहन करता है?**

**परदारस्स फलेण य आलिंगावति लोहपडिमाओ।**
**ताओ डहंति अंगं तत्ताओ अग्गिवण्णाओ।।५३।।**
**परदाराणां फलेन च आलिंगयन्ति लोहप्रतिमाः।**
**ताः दहन्ति अंगं तप्ताः अग्निवर्णाः।।**

**(परदारस्स फलेण य) और पर स्त्री सेवन के फल से वहाँ नरकों में अन्य नारकी (तत्ताओ अग्गिवण्णाओ) अग्नि के समान लाल-लाल वर्ण की तप्तायमान (लोहपडिमाओ) लोक की प्रतिमाओं का (आलिंगावन्ति) आलिंगन कराते हैं (ताओ) वे लोह प्रतिमायें (अंग डहंति) शरीर को जलाती हैं।**

**विवाहित स्वस्त्री के अलावा अन्य सभी स्त्रियाँ पर हैं, माता, बहिन,**

पुत्रीवत् हैं, सेवनीय नहीं हैं। महापुरुष तो किसी भी स्त्री का सेवन नहीं कर अखंड ब्रह्मचर्य पालन करते हैं उनमें भी सज्जन पुरुष "स्वदार संतोष" व्रत का पालन कर धर्म की रक्षा करते हैं। जो दुर्जन परस्त्री सेवन करते हैं वे उस पाप के फल स्वरूप नरकों में जन्म लेते हैं। वहाँ उन्हें तप्तायमान गर्म लोहप्रतिमाओं का आलिंगन कराया जाता है, जिससे उनका शरीर जलता है, असह्य वेदना होती है।

तत्ताइं भूसणाइं चित्ते परिहावंति अग्गिवण्णाइं।
ताइ वि डहंति अंगं परमहिला (हिला) सेण फलेण।।५४।।
तप्तानि भूषणनि चित्ते परिधारयन्ति अग्निवर्णानि।
तान्यपि दहन्ति अंगं परमहिलाभिलाषेण फलेन।।

(परमहिला हिला सेण फलेण) परस्त्री सेवन की अभिलाषा के फल से (अग्गिवण्णाइं) अग्नि वर्ण के लाल-लाल (चित्ते) विचित्र (तत्ताइं) तपे हुए (भूसणाइं) आभूषण (परिहावंति) पहनाते हैं (ताइ वि) उनसे भी (तस्स अंग डहंति) उसका अंग जलता है।

"परस्त्री पैनी छुरी" परस्त्री के सेवन की बात तो दूर रही उसके प्रति बुरी दृष्टि भी जीवन का आनन्द बिलय कर देती है। जो जीव परस्त्री की अभिलाषा करता है, वह घोर नरक में उत्पन्न होता है तथा वहाँ उसे विचित्र प्रकार के तप्त, अग्निवर्ण वाले आभूषण पहनाये जाते हैं, जिससे उसका सारा अंग जल उठता है।

तस्स चड़ावंति पुणो णारइया कूडसम्मलीयाओ।
तत्थ वि पावइ दुक्खं फाडिज्जंतम्मि देहम्मि।।५५।।
तं आरोहयन्ति पुनः नारकाः कूटशाल्मलिषु।



तत्रापि प्राप्नोति दुःखं विदारिते देहे।।

(पुणो) पुनः (णारइया) नारकी (तस्स) उसको (कूडसम्मलीयाओ चड़ावंति) कूट/उन्नत/ऊँचे संभल के वृक्ष पर चढ़ाते हैं जिस पर चढ़ते हुए (फाडिज्जंतम्मि देहम्मि) देह के विदारण से (तत्थ वि) वहाँ भी (दुक्खं पावइं) दुःख को प्राप्त करता है।

एक समय के लिए भी नारकी उसे चैन (शान्ति) नहीं लेने देते हैं। नारकी उसे कूटशाल्मली वृक्ष पर ऊँचे कंटीले सेमल के वृक्ष पर चढ़ाते हैं, उससे भी शरीर विदारण हो जाता है तथा महादुःख को प्राप्त करता है।

जे परिमाणविरहिया परिग्गहा गेण्हिया भवे अण्णे।
तेसिं फलेण गरुयं सिलिं चडावंति खंधम्मि।।५६।।
ये परिमाणविरहिताः परग्रिहा गृहीता भवे अन्यस्मिन्।
तेषां फलेन गुरुकां शिलां धरन्ति स्कन्धे।।

(जे) जो (परिमाणविरहिया) परिमाण रहित (परिग्गहा गेण्हिया) परिग्रह को ग्रहण करते हैं (ते) वे (अण्णे भवे) दूसरे भव में (तेसिं फलेण) उस पाप के फल से (गरुयं सिलिं) भारी शिला को (खंधम्मि चडावंति) कंधों पर धारण करते हैं।

परिमाण रहित परिग्रह बोझा है। पाप का हेतु है, लोभ का साधक व मुक्ति का बाधक है। जो जीव परिमाण से रहित पेटियाँ भरते हैं "पेट नहीं पेटी भरते हैं" अफलातून जोड़ते हैं वे उस पाप के फल से दूसरे भव में बड़ी-बड़ी भारी शिलाओं को कंधे पर लादते हैं। अर्थात् उन्हें मनुष्यों में कुली (सामान उठाने वाला) आदि अथवा तिर्यंचों में घोड़ा, गधा आदि बनकर भार लादना पड़ता है अथवा "बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः।।त.सू.६।।

उमास्वामि आचार्य के अनुसार प्रमाण रहित बहुत परिग्रह इकट्ठा करने वाला जीव नरकायु का आस्रव करता है, तदनुसार नरक में उसके कन्धों पर भारी वजनदार शिलायें रखी जाती हैं।

पायंति पज्जलंतं महुमज्जफलेण कलयं घोरं।
पंचुंबरफलभक्खणफलेण खावंति अंगारं।।५७।।
पाययन्ति प्रज्वलन्तं मधुमद्यफलेन लोहरसं घोरं।
पंचोदुम्बर फलभक्षण फलेन खादयन्ति अंगाराणि।।

(महुमज्जफलेण) मधु, मद्य सेवन के फल से (पज्जलंतं) जलता हुआ (घोर कलयं) कटुक दुर्गन्धित लोहरस (पायंति) पिलाते हैं व (भक्खण-फलेण) पंच उदम्बर फलों के खाने के फल से (अंगारं) अंगार को (खावंति) खिलाते हैं।

जो शराब पीते हैं, शहद खाते हैं वे नरकों में पैदा होते हैं तथा वहाँ उन्हें दुर्गंधित गर्म लोहरस पिलाया जाता है तथा बड़, पीपल, पाकर, ऊमर व कठूमर के भक्षण के फल से नरकों में अन्य नारकी उसके मुख में अंगारे खिलाते हैं।

मंसाहारफलेण य सव्वंगं सुट्ठसुव्वं पीलंति।
वल्लूरम्मि पित्तया वा कप्पंति अणप्पवसियरस्स।।५८।।
मांसाहारफलेन च सर्वांगडं-सुष्टु-पूर्वं पेलंति।
वेष्टते पित्तिना वा कम्पयन्ति अनात्मवशस्य।।

(मंसाहारफलेण) मांसाहार के परिणाम से (सव्वंगं) सम्पूर्ण शरीर (सुट्ठपुव्वं) पहले अच्छी तरह (पीलंति) पेले जाते हैं। (वा) अथवा (पित्तया वल्लूरम्मि) पिंजड़े की तरह तीक्ष्ण धातु से घिर होने पर (अणप्पवसियस्स)



पराधीन नारकी को (कंपंति) कंपा देते हैं।

जो जीव निरीह मूक प्राणियों का कच्चा या पका हुआ कैसा भी मांस खाते हैं वे उस मांस भक्षण के दुष्पाप के फल स्वरूप दुःखों के भयानक गर्त नरकों में जन्म लेते हैं। वहाँ अन्य नारकी उसके सर्वांग को पेरते हैं तथा पराधीन उस नारकी को तिक्तधातु से वेष्ठित होने पर छेदते हैं।

कुंभीपागेसु देहं पच्चंति पावयम्मस्स।
पीसंति पुणो पावा जं खंधं को वि भोगच्छी।।५९।।
कुंभीपाकेषु पुनः देहं पाचयन्ति पापकर्मणः।
पेषयन्ति पुनः पापा यत्स्कन्धं कोऽपि भोगार्थी।।

(पावयम्मस्स) पापकर्मक नारकी की (देह) देह को (कुंभीपागेसु) कुंभीपाक में (पच्चंति) पकाते हैं। (भोगच्छी) उस भोगार्थी को (को वि) कोई (पावा) पापी नारकी (पुणो) फिर (खंधं जं) पेड़ के धड़ की तरह (पीसंति) पीस डालते हैं।

प्राणियों के मांस को कड़ाहे आदि बर्तनों में पका-पकाकर खाया, उस पाप कर्म के फल से इस पाप कर्मक के शरीर को अन्य नारकी कुंभीपाक में बार-बार पकाते हैं। पश्चात् जिस प्रकार कोई पेड़ के धड़ को पीसते हैं उसी प्रकार कोई पापी नारकी उस भोगार्थी को पीस डालते हैं।

भूमीसमं देहं अल्लय चम्मं च तस्स खिल्लित्ता।
धावंति दुट्ठहियया तिक्खतिसूलेहिं णेरइया।।६०।।
भूमिसमं देहं आर्द्रकचर्म च तं कीलिता।
धावन्ति दुष्टहृदयास्तीक्ष्णत्रिशूलैः नरकाः।।

(तस्स) उसके (देहं) शरीर को (अल्लय-चम्मं) गीले चमड़े की तरह

(च) और (भूमीसमं) भूमि के समान (खिल्लिता) बनाकर (दुट्ठहियया णेरइया) दुष्ट हृदय नारकी (तिक्ख-तिसूलेहिं) पैने त्रिशूलों के साथ (धावंति) दौड़ पड़ते हैं।

नारकियों के शरीर की संरचना विविध प्रकार की होती है। उनके शरीर को दुष्ट नारकी/ईष्यालु नारकी एक दूसरे नारकी के शरीर को चमड़े की खोल के सदृश फुलाकर उस नारकी के पीछे-पीछे तीक्ष्ण त्रिशूलों को लेकर दौड़ते हैं। त्रिशूल को देखकर वह भयभीत हुआ भागता है। कहा है-

फल भुंजत जिय दुख पावैं, वचतैं कैसे करि गावै।

खायंति साणसीहावयवग्घा अयमण्हिदंतेहिं।
अट्ठावया सियाला मज्जारा किण्हसप्पा य।।६१।।
खादन्ति श्वसिंहवृकव्याघ्रा अयमहनि दन्तैः।
अष्टापदाः शृगाला मार्जाराः कृष्णसर्पाश्च।।

(साणसीहावयवग्घा) कुत्ता-सिंह-बगुला-चीता (अट्ठावया सियाला मज्जारा किण्हसप्पा य) अष्टापद, शियाल, बिल्ली और काले सर्प (अयमण्हिदंतेहिं) इसको तीक्ष्ण दांतों के द्वारा खाते हैं।

नारकियों का वैक्रियक शरीर होता है तथा उनकी अनेकों रूप बनाने की शक्ति रहती है। उन्हें अपृथक विक्रिया करने की योग्यता है पृथक की नहीं। नारकी विभंगावधिज्ञान के द्वारा पूर्वकृत पापों का स्मरण करके उसे मारने के लिए स्वयं ही तिर्यंच का रूप बनाकर कुत्ता, सिंह, बगुला, चीता, अष्टापद, शियाल, बिल्ली, काले सर्प आदि बन जाते हैं और अपनी बड़ी-बड़ी दाढ़ों व तीक्ष्ण दांतों से उसे खाते हैं।

वायस्सगिद्धकंका पिपीलिया तहा मक्कुडा डंसा।



मसगा य महुयरीओ जलुआओ तिक्खतुंडाओ।।६२।।
वायसगृधकंकाः पिपीलिकाः मत्कुणास्तथा दंशाः।
मशकाश्च मधुकर्यः जलूकास्तीक्ष्णतुण्डाः।।

(तहा) वैसे ही (वायस्सगिद्धकका पिपीलिया मत्कुणाः) कौआ, गृद्ध पक्षी, कंका, चीटियाँ, खटमल (य) और (डंसा मसगा) दंशमशक (महुयरीओ) भ्रमर (जलुआओ) जोंक व (तिक्खतुंडाओ) तीक्ष्ण दाढ़ों वाले जानवर (खादन्ति) उसे खाते हैं।

वे ही नारकी कोई क्रूरपशु बनकर व कोई पक्षी बनकर कौआ, चील, चींटी, खटमल, डांस, मच्छर आदि बनकर उसे खाते हैं।

दंडंति एकपव्वं बहुदंडया हि णारइया।
पुव्वकयपावयम्मा भासंता कडुयवयणाओ।।६३।।
दंडयन्ति एकपर्वं बहुदंडका हि नारकाः।
पूर्वकृतपापकर्माणो भाषामाणाः कटुकवचनानि।।

(पुव्वकयपावयम्मा) पूर्व-कृत कर्म रूप (कडुयवयणाओ) कटुक वचनों को (भासंता) बोलते हुए (बहुदंडया हि) बहु दण्डक (णारइया) नारकी (एकपव्वं) एक एक हिस्से को (दंडति) काट डालते हैं।

पूर्व में कटुक/दूसरों को पीड़ादायक वचनों को बोलते हुए बहुदंडक अन्य नारकी उसके शरीर के एक-एक हिस्से को काट डालते हैं। कहा भी है-

"तिल-तिल करे देह के खण्ड"

अर्थात् अप्रिय वाणी बोलने का फल, नरकों में गमन है तथा वहाँ भी अन्य नारकियों द्वारा शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाने से महापीड़ा को सहन करना होता है।

णारइयाणं वेरं छेत्तसहावेण होइ पावाणं।
मज्जारमूसयाणं जह वेरं णउलस्पाणं।।६४।।
नारकाणां वैरं क्षेत्रस्वभावेन भवति पापानां।
मार्जारमूषकानां यथा वैरं नकुलसर्पाणः।।

(जह) जैसे (पावाणं) पापी (मज्जरमूसयाणं) बिल्ली-चूहे का और (णउलसप्पाणं) नकुल-सर्प का (वेरं) वैर (सहावेण होइं) स्वभाव से होता है (तह) वैसे ही (णारइयाणं वेरं) नारकियों का वैर (छेत्तसहावेण होइ) क्षेत्र के स्वभाव से होता है।

पूर्वकृत पापोदय से किसी को देखते ही शत्रुता उपजती है और पुण्योदय से वात्सल्य जागता है। तो यह शत्रु-मित्र भाव या मित्र बैर भाव पुण्य-पाप का फल जानना चाहिए। जैसे स्वभाव से ही बिल्ली चूहे को देखकर झपटती है, उसे नाश करना चाहती है, सर्प को देखते ही पापी नकुल उसे मारने के लिए झपट पड़ता है वैसे ही पापी नारकी जीवों का आपसी वैर भाव उस क्षेत्र के प्रभाव से स्वाभाविक ही होता है। चाहे मिथ्यादृष्टि हों या सम्यगदृष्टि क्षेत्रजन्य प्रभाव सभी को प्रभावित करता है। सब एक दूसरे पर चूहा-बिल्ली व सर्प-नकुल की तरह झपटते हैं।

सव्वे वि य णेरइया णपुंसया होंति हुंडसंठाणा।
सव्वे वि भीमरूवा दुल्लेसा दव्वभावेण।।६५।।
सर्वेऽपि च नारका नपुंसका भवन्ति हुंडकसंस्थानाः।
सर्वेऽपि भीमरूपा दुर्लेश्या द्रव्यभावेन।।

(सव्वे वि) सब ही (णेरइया) नारकी (णपुंसया) नपुंसक (य) और



(हुंडसंठाणा) हुण्डक संस्थान वाले (होंति) होते हैं तथा (सव्वे वि) सभी (भीमरूवा) डरावने-भयंकर रूप वाले (दव्वभावेण दुल्लेसा) द्रव्य व भाव से अशुभ लेश्या वाले (होंति) होते हैं।

नरको में स्त्री-पुरुष वेद नहीं होता। अतः सभी नारकी नपुंसक वेद वाले होते हैं। किसी का भी कोई अच्छा योग शरीराकार नहीं होने से उनका हुण्डक संस्थान होता है। सभी नारकी जीवों का रूप डरावना, भयानक होता है तथा उनके परिणाम भी सदैव मारो-काटो आदि दुर्भावना रूप ही रहते हैं। अतः उनके सदैव द्रव्य से व भाव से कृष्ण, नील व कापोत रूप अशुभ लेश्यायें ही रहती हैं।

णिरए सहाव-दुक्खं होइ सहावेण सीयउण्हं च।
तह हुंति दुस्सहाओ घोराओ भुक्खतण्हाओ।।६।।
नरके स्वभावेन दुःखं भवति स्वभावेन शीतोष्णे च।
तथा भवतः दुःसहे घोरे क्षुधातृष्णे।।

(णिरए) नरक में (सहाव-दुक्खं) स्वभाव से दुःख (होइं) होता है (सहावेण) नरक में स्वभाव से (सीयउण्हं च) अति शीत और अति उष्णता (होइ) होती है (तह) उसी प्रकार (दुस्सहाओ घाराओ भुक्खतण्हाओ) वहाँ असह्य भयानक क्षुधा तथा प्यास (हुंति) होती है।

नरक में क्षेत्रजन्य प्रभाव ही कुछ ऐसा है कि वहाँ जीवों को स्वाभाविक दुःख होता ही है, वहाँ स्वभाव से अति-शीत व उष्णता पाई जाती है, इसी प्रकार वहाँ जीवों को भूख और प्यास की दुर्जय, असह्य, तीव्र वेदना होती है।

जइ वि खिविज्जे कोइ णरए गिरिरायमेत्तलोहुंडं।
घरणियलमपावेंतो उण्हेण विलिज्जए सव्वो।।६७।।

यद्यपि क्षिपेत् कश्चित् नरके गिरिराजमात्रलोहखण्डम्।
धरणीतलमप्राप्नुवन् उष्णेन विलीयते सर्वः।।

(जइ) यदि (कोइ) कोई (गिरिरायमेत्तलोहुंडं) गिरिराज सुमेरु पर्वत प्रमाण लोहे का टुकड़ा (वि) भी (णरए) नरक में (खिविज्जे) फैंके तो (वह भी) (धरणियलमावेंतो उण्हेण) वहाँ की उष्ण भूमितल की उष्णता को प्राप्त होता हुआ (सव्वो) सारा ही (विलिज्जए) विलय को प्राप्त हो जाता है।

नरकों में प्रथम नरक से चतुर्थ पंचम नरक के ऊपरी भाग तक ईतनी अधिक उष्णता पाई जाती है कि यदि कोई सुमेरु पर्वत के बराबर विशाल लोहे का टुकड़ा भी वहाँ फैंके तो वह भी क्षणमात्र में द्रवीभूत हो जाता है।

तित्तियमेत्तो लोहो पज्जलिओ सीयणरयमज्झम्मि।
जइ पिक्खिविजे कोइ सडिज्ज भूमिमपावंतो।।६८।।
तावन्मात्रं लोह प्रज्वलितं शीतनरकमध्ये।
यदि प्रक्षिपेत् कश्चित् घनी भवति भूमिमप्राप्नुवन।।

(जइ कोइ) यदि कोई (तित्तियमेत्तो) उसी प्रमाण का अर्थात् सुमेरु पर्वत के प्रमाण भार वाला (पज्जलियो लोहो) गरम-गरम लोहरस (सीयणरयमज्झम्मि) शीत नरकों के मध्य में (पिक्खिविजे) डालता है तो (भूमिमापावंतो) उस भूमि को पाकर उष्ण लोहरस भी (सडिज्ज) घनीभूत लोहपिण्ड हो जाता है।

पंचम नरक के निचले भाग से लेकर सप्तम नरक तक में इतनी अति शीत पाई जाती है कि कोई सुमेरू पर्वत के भार बराबर गर्म उबलता हुआ लोहरस वहाँ फैंके तो वह भी भूमि को प्राप्त कर तत्काल घनीभूत लोहपिण्ड हो जाता है।



णेरयाणं तण्हा तारसिया होइ पावयम्माणं।
जा सव्वसमुद्देहिं य पीएहिं ण उवसमं जाइ।।६९।।
नारकाणां तृष्णा तादृशी भवति पापकर्मणाम्।
या सर्वसमुद्रेषु च पीतेषु न उपशमं याति।।

(णेरयाणं पावयम्माणं) उन नरकों में तीव्र पाप कर्मों के फल से (तारसिया तण्हा) वैसी ही अति तीव्र तृष्णा (होइ) होती है (जा य) जो कि (सव्वसमुद्देहिं पीएहिं) सारे समुद्र के जल को पीने पर भी (उवसमं ण) उपशान्त नहीं (जाइ) होती है।

नरकों में जैसे अतिशीत, अति उष्णता होती है, वैसे ही वहाँ प्यास की भी अति तीव्र वेदना होती है। समुद्र का सारा पानी पी ले तो भी प्यास नहीं बुझती है। उस नारकी के कंठ, ओंठ सभी प्यास से सूख जाते हैं, वह सोचता है यदि इस समय समुद्र का पानी मिल जाये तो पूरा का पूरा पीलूं, पर वहाँ उसे एक बूंद भी जल पीने को नहीं मिलता है।

तारिसिया होइ छुहा णरयम्मि अणोवमा परमघोरा।
जा तिहुयणे वि सयले खद्धम्मि ण उवसमं जाइ।।७०।।
तादृशी भवति श्रुत नरके अनुपमा परमघोरा।
या त्रिभुवनेऽपि सकले खादिते न उपशमं याति।।

(तारिसिया) उसी प्रकार की तीव्र असह्य (अणोवमा) उपमा रहित (परमघोरा) अति भयानक (छुहा) क्षुधा (णरयम्मि) नरक में (होइ) होती है। (जा वि) जो कि (तिहुयणे) त्रिभुवन के (सयले खद्धम्मि) सकल पदार्थों को खाने पर भी (उपसमं ण) उपशान्त नहीं (जाइ) होती है।

नरकों में जैसे अति शीत-उष्ण व अति प्यास होती है वैसे ही वहाँ नारकियों के भयानक, उपमा रहित इतनी भूख लगती है, कि तीन लोक के समस्त पदार्थों को खा लेने पर भी भूख शान्त नहीं होती है, परन्तु वहाँ खाने के लिए एक दाना भी नहीं मिलता है।

चुण्णीकओ वि देहो तक्खणमेत्तेण होइ संपुण्णो।
तेसिं अउणयाले मिच्चू ण होइ पावाणं।।७१।।
चूर्णीकृतोऽपि देहस्तत्क्षणमात्रेण भवति सम्पूर्णः।
तेषामपूर्णकाले मृत्युर्न भवति पापानां।।

(पावाणं) पापी नारकी जीवों का (देहो) शरीर (चुण्णीकओ वि) चूर्ण करने पर भी (तक्खणमेत्तेण) क्षणमात्र में ही पूरा (होइ) हो जाता है (तेसि) उनकी (अउण्णयाले) अकाल में (मिच्चू) मृत्यु (ण होइ) नहीं होती है।

पापी नारकी आपस में इस प्रकार दूसरे को मारते-पीटते हैं कि उसके शरीर के तिल के समान टुकड़े-टुकड़े तक कर देते हैं तथापि वह शरीर एक क्षण मात्र मिलाकर पूरा हो जाता है। प्रतिपल नारकी यही चाहते है कि कब मृत्यु आवे और कब यहाँ से छूटें, मरना बहुत चाहते हैं पर जिसने पाप करते समय अशुभ परिणामों से जितनी आयु का बन्ध किया है, उतना काल उसे पूरा भोगना ही पड़ता है। वहाँ कितना भी चाहने पर भी अकाल में मृत्यु नहीं होती है।

उप्पण्णमसमपहुदी आमरणंतं सहंति दुक्खाइं।
अच्छिणिमीलयमेत्तं सोक्खं ण लहंति णेरइया।।७२।।
उत्पन्न समयप्रभृत्यामरणान्तं सहंते दुःखानि।
अक्षिनिमीलनमात्रं सौख्यं न लभन्ते नारकाः।।



(णेरइया) नारकी जीव (उप्पण्णसमयपहुदी) उत्पन्न होने के प्रथम समय को आदि लेकर (आमरणंतं) मृत्यु पर्यन्त (दुक्खाइं सहंति) दुःखों को सहते हैं वहाँ (अच्छिणिमीलयमेत्तं) आँखों की टिमकार कालप्रमाण मात्र भी (सोक्खं ण लहंति) सुख को नहीं पाते हैं।

उन नरकों में इतना दुःख है कि नारकी जीव जिस काल वहाँ उत्पन्न होते हैं उस समय से लेकर मरण पर्यन्त निरन्तर शीत, उष्ण, भूख, प्यास, मार-काट आदि के दुःख सहते हैं। इतना ही नहीं, नेत्रों के टिमकार में जितना समय लगता है उतने काल प्रमाण भी वे वहाँ सुख को प्राप्त नहीं करते हैं।

एवं णरयगईए बहुप्पयाराइं होंति दुक्खाइं।
बहुकालेण वि ताइं ण य सक्किज्जंति वण्णेउं।।७३।।
एवं नरकगतौ बहुप्रकाराणि भवन्ति दुःखानि।
बहुकालेनापि तानि न च शक्नुवन्ति वर्णायितुं।।

(एवं) इस प्रकार (णरयगईय) नरकगति में (बहुप्पयाराइं) बहुत प्रकार के (दुक्खाइं) दुःख (होंति) होते हैं (य) और (ताइं) उनको (बहुकालेण वि) बहुत काल में भी (वण्णेउं) वर्णन करने के लिए (सक्किज्जंतिण) समर्थ नहीं हैं।

यहाँ पर पाप के फलस्वरूप प्राप्त नरक गति के दुःखों का वर्णन कथन का उपसंहार करते हुए आचार्य श्री खेद प्रकट करते हुए लिख रहे हैं, ओह! वहाँ नरकों में विविध प्रकार के दुःख हैं। उनका वर्णन चिरकाल तक भी किया जावे तो कम ही है अर्थात् सम्पूर्ण दुःख तो वहाँ इतने है कि मेरी लेखनी उसका वर्णन करने के लिए भी शक्य नहीं है।

उव्वरिऊण य जीवों णरयगईदो फलेण पावस्स।
पुणरवि तिरियगईए पावेइ अणेयदुक्खाइं।।७४।।
उद्वर्त्य च जीवो नरकगतितः फलेन पापस्य।
पुनरपि तिर्यग्गत्यां प्राप्नोति अनेकदुःखानि।।

(य) और (जीवों) जीव (पावस्स फलेण) पाप के फल से (णरयगईदो) नरकगति से (उव्वरिऊण) निकलकर (पुणरवि) पुनः (तिरियगईए) तिर्यंचगति में (अणेयदुक्खाइं) अनेक दुःखों को (पावेइ) प्राप्त होता है।

नरक में निरन्तर अशुभ परिणामों नरकायु का समय व्यतीत कर पाप के फल से यह जीव अनेक दुःखों की सागर ऐसी तिर्यंचगति में उत्पन्न होता है। तिर्यंचगति में जिन महादुःखों को यह प्राप्त करता है उनका वर्णन आगे आचार्य करते हैं.....

वाहिज्जइ गुरुभारं णेच्छंतो पिट्ठिठऊण लोएहिं।
पुव्वकयकम्मे पावयछोडिज्जंतीए पुट्ठीए।।७५।।
वाह्यते गुरुभारं नेच्छन् ताड़यित्वा लोकैः।
पूर्वकृतकर्मा पापक छोटियंतया पृष्ठ्या।।७५।।

(लोएहिं) लोगों के द्वारा (पिट्ठिटऊण) पीड़ा पहुँचाकर (गुरुभारं) अधिक भार (णेच्छंतो) ले जाता हुआ (पावय-छोड़िज्जंतीए) उन्मार्ग पर चलने पर (पुट्ठीए) पीछे से (पुव्वकयकम्मे) पूर्वकृत कर्मक को (वाहिज्जइ) पीटा जाता है।

पूर्वकृत पापकर्मोदय से अन्य नारकियों द्वारा पीडा पहुँचाकर वह अधिक भार वहन करता हुआ मार्ग से भटक जाता है। मार्ग को छोड़े जाने पर वह पीछे से पीटा जाता है।



ताडणतासणदुक्खं बंधणं तह णासविंधणं दमणं।
कण्णच्छेदणदुक्खं लंछण-णिल्लंछणं चेय।।७६।।
ताडनत्रासनदुःख बन्धनं तथा नासावेधनं दमनम्।
कर्णच्छेदनदुःख लाच्छनं निलाच्छनं चैव।।७६।।

(ताडण-तासणदुक्खं) ताड़न-त्रासन का दुःख (बंधणं) बांधना (तह) उसी प्रकार (णासविंधणं) नाक का छेदन करना (दमणं) दण्डित करना (कणछेदणदुक्खं) कानों का छेदन करना (च) और (लंछणं णिल्लंछणं) चिन्हों से रहित कर देना इस प्रकार अनेक दुःख तिर्यंच गति में जीवों को भोगने पड़ते हैं।

तिर्यंचों को कोई मारता है, पीटता है, बेंत आदि से ताड़ता है अथवा वचनों से ताड़ना देता है, ठण्डी में ओढ़ने के लिए कोई वस्त्र नहीं, गर्मी में कहीं पंखा नहीं, समय पर भूख-प्यास से तपड़ते पशु को भोजन पानी की व्यवस्था नहीं, इस प्रकार ठण्डी-गर्मी, भूख-प्यास का त्रास रूप दुःख, नाक-कान छेदना, सवारी अथवा माल वहन कर ले जाते हुए को थोड़ी देर भी रुकते ही दण्ड-कोड़ों की मार लगाना ऐसे घोर दुःख तिर्यंच गति में जीव प्राप्त करता है, इतना ही नहीं पूर्व पाप के फल से स्वार्थी लोलुपी मनुष्य उनके चिन्हं पूंछ, बाल, कान, सींग आदि काटकर उन्हें चिन्ह से रहित कर देते हैं। शक्तिहीन मूक पशु परवश हो असह्य दुःखों को सहन करता है।

सीउण्हं जलवरिसं चउमहिमारुवं छुहा तण्हा।
णाणाविहवाहीओ सहइ तहा दंसमसया य।।
शीतोष्णे जलवर्षा चतुर्ममहिमारूपं क्षुधा तृष्णां।
नानाविधव्याधीश्च सहते तथा दंशमशकांश्च।।७७।।

**वहाँ तिर्यंच गति में भी (सीउण्हं जलवरिसं चउमहिमारुवं छुहा तण्हा) शीत, उष्ण, जल, वर्षा, क्षुधा और तृषा रूप चार प्रकार के महा दुःख (य) और (णाणाविहवाहीओ) विविध रोग (तहा) तथा (दंसमसया) दंशमशक को (सहइ) सहन करता है।**

**निरीह पशुओं के तन पर एक कपड़ा नहीं रहता है। शीत में ठंडी लहरें शरीर को दुःखी करती हैं तो गर्मी में गर्म लू (हवा) चलती है। कई पशु तो बेमौत मृत्यु के शिकार बनते हैं और कितने ही पीड़ित हो वेदना को सहते हैं। इसी प्रकार भूख लगे तो कोई अन्न देने वाला नहीं प्यास लगे तो पानी का मिलना उनको कठिन है तथा वर्षा ऋतु में मकान नहीं जिसमें बैठकर पानी की बरसाती मूसलधाराओं से अपनी रक्षा कर सकें। तिर्यंच गति में जीव चतुर्महिमा रूप अर्थात् चारों ओर से दुःख ही दुःख सहते हैं।**

**एइंदिएसु पंचसु अणेयजोणीसु वीरियविहूणो।**
**भुंजंतो पावफलं चिरकालं हिंडए जीवो।।७८।।**
**एकेन्द्रियषु पंचसु अनेकयोनिषु वीर्यविहीनः।**
**भुंजानः पायफलं चिरकाल हिण्डते जीवः।।**

**(जीवो) जीव (वीरियविहूणो) शक्ति हीन होकर (तिर्यंच गति में भी) (एइंदिएसु पंचसु अणेयजोणीसु) एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक (अणेयजोणीसु) अनेक योनियों में (चिरकालं) चिरकाल तक (पावफलं भुंजंतो) और (हिंडए) घूमता है पाप के फल को भोगता हुआ।**

**यह जीव तिर्यंच गति में उत्पन्न हुआ तो यहाँ भी शक्ति से रहित होकर एकेन्दिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों की आयु में चिरकाल तक उत्पन्न होते हुए स्वकृत पापों के फल को भोगता हुआ घूमता रहता था।**



**खणणुत्तावणवालणवीहणविच्छेयणाइं दुक्खाइं।**
पुव्वकयपावयम्मो सहइ वराओ अणप्पवसो।।७९।।
खननोत्तापनज्वलनव्यजनविच्छेदनादिदुःखानि।
पूर्वकृतपापकर्मा सहते वराकः अनात्मवशः।।

(वराओ) बेचारा (अणप्पवसो) पराधीनतावश (खणुत्तावण वालणवीहणविच्छेयणाइं) आँख, दाँत आदि निकाल कर नेत्र स्थान व मुख को पोला करना, गर्मी, पीड़ा, दहन, बाल का निकाल लेना, अंग-उपांग का विच्छेदन करना आदि (दुःखानि) दुःखों को (पुव्वयकयपावयम्मो) पूर्वकृत पाप कर्मों को (सहइ) सहन करता है।

बेचारा यह जीव तिर्यंच गति में पराधीन हुआ क्या-क्या नहीं सहन करता यह विचारणीय है? कोई उनके दाँत निकाल कर मुँह पोला करता है तो कोई उनकी आँखें निकाल लेता है, गर्मी की दहन-तपन रूप पीड़ा के साथ भेड़, सूअर आदि जानवर उनके मासूम बच्चों के बालों को खेंच-खेंचकर निर्दयता से दुष्ट प्रकृति जीवों द्वारा निकाला जाता है। कितनी असह्य वेदना उनको है। एक क्षण विचार कीजिए? पर यह सब पूर्वकृत पापों का फल है, अतः जैसा किया है वैसा भोगना ही पड़ता है।

एवं तिरियगई सम्मत्ता-एवं तिर्यग्गतिः समाप्ता।
(इस तरह तिर्यंञ्चगति का वर्णन समाप्त हुआ।)

## मनुष्यगतिवर्णन

बहुवेयणाउलाए तिरियगईए भमित्तु चिरकालं।
माणुसहवे वि पावइ पावस्स फलाइं दुक्खाइं।।८०।।
बहुवेदनाकुलायां तिर्यग्गतौ भ्रमित्वा चिरकालम्।
मानुषभवेऽपि प्राप्नोति पापस्य फलानि दुःखानि।।

(बहुवेयणाउलाए) विविध प्रकार के दुःख वेदना और (तिरियगईए)-तिर्यंचगति की, आकुलता में (चिरकालं) लम्बे समय तक (भ्रमितु) भ्रमण करके (माणुसहवे वि) मनुष्य भव में भी (पावस्स) पाप के (फलाइं) फल परिणाम रूप (दुक्खाइं) दुःखों को (पावइ) प्राप्त होता है।

पापी जीव कहीं भी चला जावे उसे अपने स्वकृत पापों का फल तो भोगना ही पड़ता है। इसी तरह नरक व निगोद तथा तिर्यंचों के असह्य दुःखों से पीडित यह जीव विविध वदेनाओं, पीड़ाओं से व्याकुल हुआ पाप-पुण्य की समानता के उदय में मनुष्य गति में उत्पन्न तो हो गया, किन्तु यहाँ भी पूर्वकृत तीव्र पापों के फल से इसने अनेक दुःखों को प्राप्त किया।

पारसियभिल्लवव्वरचंडालकुलेसु पावयम्मेसु।
उप्पज्जिऊण जीवो भुंजइ णिरओवमं दुक्खं।।८१।।
परसीकभिल्लवर्वरचण्डालकुलेषु पापकर्मसु।
उत्पद्य जीवो भुक्त नरकोपमं दुःखं।।

(पारसियभिल्लवव्वरचंडालकुलेसु) पारसीक, भील, बर्बर, चाण्डाल कुलों में (पावयम्मेसु) पाप कर्म से (उप्पज्जिऊण) उत्पन्न होकर (जीवो) जीव (णिरओवमं) नरक के समान (दुक्खं) दुःखों को (भुंजइ) भोगता है।

मनुष्य गति में पाप कर्म के उदय से नीच कुलों में पारसीक, भील, बर्बर, चांडाल आदि जातियों में उत्पन्न होकर इस जीव ने नरक के समान असह्य दुःखों को प्राप्त किया।

जइ पावइ उच्चत्तं चिरकालं पाविऊण णीयत्तं।
तत्थ विगब्भपहुदियं पावेइ अणेय-दुक्खाइं।।८२।।
यदि प्राप्नोति उच्चत्वं चिरकालं प्राप्य नीचत्वम्।



तत्रापि गर्भभवानि प्राप्नोति अनेकदुःखानि।।

(जइ) यदि (चिरकालं) बहुत समय तक (णीयत्व) नीचपना (पाविऊण) पाकर (उच्चतं) उच्चपना (पावइ) पाता है तो (तत्थविगब्भपहुदियं) वहाँ भी गर्भ में होने वाले (अणेय दुक्खाइं) अनेक दुःखों को (पावेइ) पाता है।

मनुष्य गति में भी यदि लम्बे समय तक नीच कुलों में निम्न जातियों में उत्पन्न होकर कदाचित पुण्यवशात् उच्चकुलों/उच्चवंश/सभ्य जातियों में भी उत्पन्न हुआ तो वहाँ भी इस जीव ने गर्भावस्था के भयानक अनुपम अवर्णनीय दुःखों को प्राप्त किया।

जम्मंधमूयवहिरो उप्पज्जइ सो फलेण पावत्तं।
उप्पण्णदिवसपहुई पीडिज्जइ घोरवाहीहिं।।८३।।
जन्मान्धमूकबधिरः उत्पद्यते स फलेन पापस्य।
उत्पन्नदिवसप्रभुतितः पीड़यते घोरव्याधिभिः।।

आगे और भी दुःख बताते हैं- (सो पावस्स फलेण) वह पाप के फल से (जम्मंधमूयवहिरो) जन्मान्ध, मूक, बहिरा (उप्पज्जइ) उत्पन्न होता है तथा (उप्पण्णदिवसपहुई) उत्पन्न हुआ उस दिन से लेकर (घोर वाहीहिं) घोर व्याधियों से (पीड़िज्जइ) पीड़ित रहता है।

मनुष्य गति के दुःख भी विविध एवं विचित्र हैं। यहाँ भी उच्चकुल-सम्यजाति आदि प्राप्त भी हुई तो पाप के फल से जन्म से ही अन्धा होकर उल्लू के समान दिन में सूर्य के प्रकाश को देखने के लिए सदा दुःखी रहा तथा रात्रि में चन्द्रमा की चांदनी को देखने के लिए तड़फता है। इतना ही नहीं जन्म से गूंगा-बहिरा हुआ बोल नहीं सकता, सुन नहीं सकता इसकी वेदना को, मानसिक दुःखों को वे स्वयं अनुभव कर सकते हैं, कलम से लिखना भी दुरुह

है। इस प्रकार यहाँ मनुष्य गति में भी जन्म दिन से लेकर आयु पर्यंत विविध रोगों से पीड़ित होता है।

णवजोवणं पि पत्तो इच्छिय सुक्खं ण पावए किं पि।
गच्छइ जोवणकालो सव्वे वि णिरच्छओ तस्स।।८४।।
नवयौवनमपि प्राप्तः इच्छितसुखं न प्राप्नोति किमपि।
गच्छति यौवनकालः सर्वोऽपि निरर्थकस्तस्य।।८४।।

मानव पर्याय में इस जीव ने (णवजोवणं पि पत्तो) नवयौवन भी प्राप्त किया तो (किं पि) थोड़ा भी (इच्छियसुक्खं ण पावए) इच्छित सुख प्राप्त नहीं किया तथा (जीवणकालो गच्छइ) यौवनावस्था निकल गई कि (तस्स) उसका (सव्वो वि) सब कुछ (णिरच्छओ) निरर्थक हो गया।

इस जीव ने किसी तरह माता के गर्भ से छुटकारा पाकर बालपन में अज्ञानता वश दुःख पाया तो यौवन सुख की इच्छा से त्रिया के साथ प्यार किया, पर युवावस्था में भी इच्छित सुखों को यह थोड़ा भी भोग नहीं पाया। समय बीतते ही इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं तथा वृद्धावस्था आते ही सब कुछ निरर्थक हो गया।

धणबंधविप्पहीणो भिक्खो भमिऊण भुंजए णिच्चं।
पुव्वकयपावयम्मो सुयणो वि ण यच्छए सोक्खं।।८५।।
धनबांधवविप्रहीनो भिक्षां भ्रमित्वा भुंक्ते नित्यं।
पूर्वकृतपापकर्मा, सुजनोऽपि न यच्छति सौख्यं।।

(पुव्वकयपावयम्मो) पूर्वकृत पापकर्मोदय से (यदि मनुष्य हुआ तो वहाँ भी) (धणबंध विप्पहीणो) धन, परिवार और बुद्धि हीन मनुष्य हुआ और



(भुंजए) भोजन के लिए (णिच्चं) सदा (भमिऊण) भ्रमण करके (भिक्खो) भिक्षा का ग्रहण किया (व) (सुयणो वि) सुजन होकर भी नहीं प्राप्त किया (यच्छएसोक्खं य) इच्छित सुख को प्राप्त नहीं कर पाता है।

यह जीव यदि पुण्योदय से मनुष्य भी हुआ तो पूर्वकृत पापकर्मोदय से वहाँ भी धन-जन (परिवार) बुद्धिमता के नहीं होने से प्रतिदिन घूम-धूमकर भिक्षा मांग-मांग कर खाया इस प्रकार सज्जन पुरुष भी हुआ तो इष्ट सुखों को इसने प्राप्त नहीं किया।

पसुमणुणिरयवगईए एवं हिंसालिय-चोरियाइदोसेहिं।
बहुदुक्खेहिं वराओ चिरकालं पावए जीओ।।८६।।
पशुमनुनरकगतौ एवं हिंसालीक-चौर्यादिदोषैः।
बहुदुःखानि वराको चिरकालं प्राप्नोति जीवः।।

(जीओ) यह जीव (वराओ) विचारा (पसुमणुणियगईए) तिर्यंच, मनुष्य और नरक गति में एवं इस प्रकार (हिंसालिय-चोरियाइ-दोसेहिं) हिंसा, झूठ, चोरी आदि दोषों के द्वारा (बहुदुक्खेहिं) बहुदुःखों को (चिरकालं) लम्बे समय तक (पावए) प्राप्त करता है।

बेचारा यह जीव पशु मनुष्य नरक गति में हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह आदि दोषों के द्वारा इस दुःखमय संसार में अनन्तकाल तक बहुत दुःखों को प्राप्त करता है।

सव्वण्हु वयणवज्जिय बालतवं कुणइ णरो मूढो।
सो पावेइ वर कुलं उवरिलोगहीण ! देवत्तं।।८७।।
सर्वज्ञवचनं वर्जयित्वा बालतपः करोति नरो मूढः।
स प्राप्नोति वरकुलं अपर-लोक-हीन-देवत्त्वं।।

(सवण्हु-वयण-वज्जिय) सर्वज्ञ वचन से रहित (मूढो णरो) अज्ञानी मनुष्य (बालतवं) बालतप (कुणइ) करता है तो भी (सो) वह (वरकुलं) उत्तम कुल और (उवरिलोग-हीणदेवत्तं) ऊपरी लोक/देव लोक में हीन देवत्व को भी (पावेइ) प्राप्त करता है।

सर्वज्ञ के वचनों को नहीं जानता हुआ बाल-तप करने वाला अज्ञानी मनुष्य ऊपर देवलोक में उत्तम कुल परन्तु हीन-देवत्व को प्राप्त होता है।

दट्ठण अण्णदेवे महिड्ढिए दिव्ववण्णमारोगं।
होऊण माणभंगो चित्ते उप्पज्जए दुक्खं।।८८।।
दृष्टवा अन्यदेवेषु महर्धिकेषु दिव्यवर्णमारोग्यम्।
भूत्वा मानभंगा चित्ते उत्पद्यते दुःखम्।।

देवगति में भी यह जीव (अण्णदेवे महिड्ढए) दूसरे देवों की महा ऋद्धियाँ (दिव्वण्णमारोग्गं) दीप्तिमान तेजस्वी रूप लावण्य व आरोग्यता को (दट्ठण) देखकर (माणभंगो होऊण) अपना अपमान हुआ जानकर अथवा अपमानित होकर (चित्ते) मन में (दुक्खं उप्पज्जए) दुःख को प्राप्त होता है।

नरक, तिर्यंच व मनुष्य गतियों के दुःखों से छूटकर कदाचित पुण्ययोगबलेन यह जीव देवगति में उत्पन्न हुआ तो वहाँ भी अपने से बड़े देवों की ऋद्धि, वर्ण, रूप, लावण्य, निरोगता को देखकर अपमानित होकर मानसिक दुःख से सतत पीड़ित होता रहता है।।

तिलोयत्पव्वसरणं धम्मो सव्वण्हु भाविओ विमलो।
तइयामएण गहिओ तेण महंतारिओ एहिं।।८९।।
त्रिलोकसर्वशरणं धर्मः सर्वज्ञभावितो विमलः।
तस्यागमेन गृहीतस्तेन महत्तारकः एतैः।।



मानसिक रोग से पीड़ित वह कुछ एक क्षण के लिए विचार करता है, ओह! (तिलोयसव्वसरणं धम्मो) तीन लोक में सब जीवों के लिए शरणभूत एक मात्र धर्म ही है। कैसा है वह धर्म? (सव्वणहु भाविओ विमलो) भगवान सर्वज्ञदेव के द्वारा कहा गया निर्मल पवित्र अहिंसामयी वह धर्म है, (महंतारिओ एहिं) इस संसार से तारने में महान ऐसा महातारक है (तइयामएण गहिओ) उस धर्म को मुझे आगम से ग्रहण करना चाहिए।

मानसिक पीड़ा जिसे आधि भी कहते हैं उससे पीड़ित वह जीव देवगति में अपने पापों का पश्चाताप कर विचार करता है- अहो! इन चारों गतियों में कहीं भी कुछ सुख दिखाई नहीं देता है। इस समय घोर संसार से तारक जिनधर्म-रत्नत्रयमयी, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह का कथन करने वाला विमल धर्म ही एकमात्र मुझे शरण है। इस जिनधर्म को मैं जिनागम में कहे अनुसार ग्रहण करता हूँ। इस प्रकार का विचार कर वह देव जिनधर्म की शरण ले जिनाज्ञानुसार चलने की प्रतिज्ञा मन में धारण करता है।

छम्मासउगसेसे विलाइ माला विणस्सए छाए।
कंपंति कप्परुक्खा होइ विरागो य भोयाणं।।९०।।
षण्मासायुष्कशेषे विलीयते माला विनश्यति छाया।
कम्पन्ते कल्पवृक्षा भवति विरागश्च भोगेभ्यः।।

(छम्मासउगसेस) देव की छह माह आयु शेष रहने पर (माला विणस्सए) माला मुरझा गई (छाए विणस्सई) छाया नाश को प्राप्त हो गई। (कप्परुक्खा कंपंति) कल्पवृक्ष कांपते हैं (य) और (स) वह (भोयाणं विरागो होइ) भोगों से विरक्त होता है।

जिनधर्म की शरण प्राप्त कर वह देव सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर देव, शास्त्र, गुरु (वीतरागी देव) निर्ग्रंथ गुरु व दयामयी धर्म का समीचीन श्रद्धानकर

सम्यग्दृष्टि हुआ। आयु के छह मास बाकी बचे तभी देव की मन्दार माला मुरझा गई, छाया विनश गई, कल्पवृक्ष कंपित हुए पर सम्यग्दृष्टि देव भोगों से अलिप्त हुआ राग-से विराग की ओर बढ़ते हुए भोगों से विरक्त हुआ।

धर्म के प्रभाव से जीव सम्यग्दृर्शन को प्राप्त कर संसार शरीर-भोगों से अलिप्त हो जाता है तथा देवोपुनीत वैभव भी तृणवत् समझता है, जबकि मिथ्यादृष्टि पापोदय से देवर्द्धि आदि वैभव में उन्मत्त हो वियोग के समय विलाप करता है- हाय! हाय! मेरा सारा धन वैभव मुझसे छूट रहा है, मेरा अब क्या होगा? धर्म की महिमा अपूर्व है।

बहुणट्टगीयसाला णाणाविकप्पतरुवराइण्णे।
भो सुरलोयपहाणा णक्खयपडंतयं विसमं।।91।।
बहुनृत्यगीतसाला नानाविधकल्पतरुवराकीर्णाः।
भोः सुरलोक प्रधानाः नखच्छित - पटंवरं विषमं।।

जैसे (भो) अहो! (णक्खय-पडंतयं) नखसे छेदित अति सुन्दर वस्त्र (विसमं) दुःखदायी होता है। वैसे ही (सुरलोय-पहाणा) देवलोक के प्रमुख (णाणाविह-कप्पतरुवराइण्णो) नाना प्रकार के कल्पवृक्ष से युक्त (बहु-णट्ट-गीय-साला) बहुत सी नृत्य, संगीत शालायें दुःख उत्पन्न करती हैं।

अहो! जैसे अति सुन्दर भी वस्त्र नख से छेदित हुआ दुःखदायी होता है, वैसे ही देव लोक में अनेक प्रकार के कल्पवृक्षों से युक्त बहुत सी नृत्य व गीतशालायें दुःखदायी हैं।

वसियव्वं कुच्छीए कुणिमाए किमिकुलेहिं भरियाए।
पीयव्वं कुणिमवयं जणणीए मे अहम्मेण।।92।।
वस्तव्यं कुत्सायां कुणपायां क्रमिकुलै भृतायां।



पातव्यं कुणपपयं जनन्या मया अधर्मेण।।

(मे) मुझे (अहम्मेण) अधर्म से (कुच्छीए) कुच्छी/उदर में (कुणिमाए किमिकुलेहिं कुणिमपयं भरियाए जणणीए वसियव्वं पीयव्वं) बदबूदार, कृमि-कीड़ों से भरे हुए ऐसे माता के गर्भ में निवास करना होगा।

वह देव विचार करता है अहो! पाप वैचित्र्य! मुझे पाप कर्म के फल से अथवा हिंसादि अधर्म के फल से घृणित, कृमि-कीटों से युक्त ऐसे बदबूदार स्थान माता के गर्भ में नौ माह तक निवास करना पड़ेगा।

सो एवं विलवंतो पुण्णवसाणम्मि असरणो संतो।
मूलच्छिण्णो वि दुमो णिवडइ हेट्ठामुहो दीणो।।93।।
स एवं विलपन् पुण्यावसानेऽशरणः सन्।
मूलच्छिन्नोऽपि द्रुमः निपतति अधोमुखो दीनः।।

(सो) वह (एवं विलवंतो) इस प्रकार विलाप करता हुआ (पुण्णवसाणम्मि) पुण्य समाप्त होने पर (असरणो संतो) अशरण होता हुआ (मूलच्छिण्णो वि दुमो) मूलोच्छेद किये वृक्ष की तरह (दीणो हेट्ठामुहो) दीन हो नीचा मुख करके (णिवडइ) भूमि पर गिरता है।

"माता के गर्भ में नौ माह तक बदबूदार घृणित स्थान में आवास करने का असाह्य दुःख अब मुझे सहन करना पड़ेगा" ऐसा विचार करते ही वह पुण्य समाप्त होते ही अशरण हुआ, जैसे वृक्ष की जड़ काट दी जावे तो वह तुरंत ही गिर जाता है, वैसे ही पुण्य की जड़ उच्छेद होते ही वह तत्काल ही नीचामुख किये दीनमुख हो भूमि पर गिर जाता है।

एवं देवगई सम्मत्ता - एवं देवगतिः समाप्ता।
(इस तरह देवगति समाप्त हुई।)

एवं अणाइकाले जीओ संसारसायरे घोरे।
**परिहिंडइ अलहंतो धम्मं सव्वण्हुपण्णत्तं।।६४।।**
**एवमनादिकाले जीवः संसारसागरे घोरे।**
**परिहिंडते अलभमानो धर्मं सर्वज्ञप्रणीतम्।।६४।।**

**(एवं) इस प्रकार (अणाइकाले) अनादिकाल तक (जीओ) जीव (घोरे संसार सायरे परिहिंडइ) भयानक संसार सागर में घूमता है (सव्वण्हुपण्णत्तं) सर्वज्ञप्रणीत (धम्मं) जिनधर्म को (अलहंतो) प्राप्त नहीं करते हुए।**

**इस अनादिकालीन संसार में इस जीव ने चतुर्गति के भयानक दुःखों को सहन करते हुए परिभ्रमण किया। इस परिभ्रमण का एकमात्र कारण इसने सर्वज्ञ कथित जिनधर्म को आज तक प्राप्त नहीं किया।**

**परिचइऊण कुधम्मं तम्हा सव्वण्हुभासिओ धम्मो।**
**संसारुत्तणट्ठं गहियव्वो बुद्धिमंतेहिं।।६५।।**
**परित्यज्य कुधर्मं तस्मात् सर्वज्ञभाषितो धर्मः।**
**संसारतारणार्थं गृहीतव्यो बुद्धिमद्भिः।**

**(तम्हा) इसलिए (बुद्धिमंतेहिं) बुद्धिमानों को (कुधम्मं) कुधर्म का (परिचइऊण) परित्याग करके (संसारस्सुत्तणट्ठं) संसार समुद्र के पार उतरने के लिए (सव्वण्हुभासिओ धम्मो) सर्वज्ञभासित रत्नत्रय धर्म को (गहियव्वो) ग्रहण करना चाहिए।**

**इसलिए मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र रूप कुधर्म का त्याग करके बुद्धिमानों को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म को धारण करना चाहिए। क्योंकि यह रत्नत्रय धर्म वीतरागी-सर्वज्ञ-हितोपदेशी के द्वारा कहा गया, संसार समुद्र से तारने के लिए नौका के सदृश है।**

**सव्वण्हू वि य णेया लोए बम्हाणहरिहराईया।**



तम्हा परिक्खियव्वा सव्वेण णरेण कुसलेण।।६६।।
सर्वला अपि च ज्ञेया लोके ब्रह्महरिहरादिकाः।
तस्मात् परीक्षिव्या सर्वैः नरैः कुशलैः।।

(लोए) लोक में (बम्हाणहरिहराईया वि) ब्रह्मा, हरि, हर आदिक भी (सव्वण्हू ज्ञेया) सर्वज्ञ नाम से जाने जाते हैं (तम्हा) इसलिए (सव्वेण णरेण कुसलेण) सभी मानवों वा सज्जनों को (परिक्खियव्वा) सच्चे सर्वज्ञ की परीक्षा करना चाहिए।

वीतरागता और सर्वज्ञता का अविनाभावी सम्बन्ध है। जहाँ तक क्षुधादि अठारह दोष जीव में पाये जाते हैं वे हरि, हर, ब्रह्मा अथवा वृषभ, महावीर कोई भी क्यों न हो वीतरागता नहीं बनती है। वीतरागी (दिगम्बर क्रोधादि कषायों से रहित) समस्त कर्म रहित पुरुष ही सर्वज्ञ हो सकता है। वर्तमान काल में संसार में सभी द्वेषी हरि, हर, ब्रह्मा आदिक भी सर्वज्ञ कहे जाने लगे यह सर्वथा असत्य है।

जिनशासन परीक्षा प्रधान है, यहाँ नाम की नहीं गुणों की पूजा की गई है। सभी द्वेषी हरि, हर, ब्रह्मा या महावीर अपूज्य हैं जबकि वीतरागी महावीर, हरि, ब्रह्मा सभी पूज्य हैं। अतः बुद्धिमान सज्जनों का कर्तव्य है कि "सर्वज्ञ" की अच्छी तरह पूर्णरूपेण परीक्षा करें।

खट्टंगकपालहरो डमरूय-वज्जंत-भीसणायारो।
णच्चइ पिसायसहिओ रयणीए विउवणे भीमे।।६७।।
खट्वाङ्गकपालहरः डमरूकं वादयन् भीषणाकारः।
नृत्यति पिशाच-सहितः रजन्यां पितृवने भीमे।।
जो सिक्खदाढभीसणपिंगलणयणेहित दाहिणमुहेण।
भक्खेइ सव्वजीवे सो परमप्पा कहं होइ।।६८।।
यः तीक्षणदाढ़भीषणपिंगलनयनैः मुखेन।
भक्षयति र्विजीवान् स परमात्मा कथं भवति।।

(जो) जो (खट्टंग) शस्त्रों को हाथों में धारण किये (भीसणायरो) डरावनी भयंकर आकृति वाला है (डमरूय वज्जंत) डमरू बजाता हुआ (रयणीए) रात्रि में (भीमे पिउवणे) भयानक ऐसे श्मशान भूमि में (पिसायसहिओ णच्चइ) पिशाचरूप नाचता है, (तिक्खदाढ़ भीसणपिंगलणयणेहिं) भयानक तीक्ष्ण दाढ़ व पीले नेत्रों से सहित है, (दाहिणमुहेण) दीन-मुखी (सव्वजीवे भक्खेइ) सब जीवों को खाता है (सो) वह (कपालहरो) "रूद्र" (परमप्पा कहं) परमात्मा कैसे (होइ) हो सकता है?

सर्वज्ञ की परीक्षा किये बिना ही कोई मन्दबुद्धि रूद्र को भी परमात्मा मानते हैं, उसके लिए यहाँ आचार्य श्री कहते हैं- भव्यात्मा शस्त्रधारी, डमरू लेकर भयानक श्मशान भूमि में अर्द्धरात्रि में नाचने वाला, पीले नेत्रों वाला, अपनी तीक्ष्ण दाढ़ों से जीवों का भक्षण करने वाला, दरिद्री परमात्मा कैसे हो सकता है? अर्थात् कभी नहीं। परमात्मा तो निर्दोष, वीतरागी व सर्वज्ञ ही हो सकता है। अतः सज्जनों को परमात्मा-सर्वज्ञ के लक्षणों को जानकर ही उनका निश्चय करना योग्य है।

अहवा सो परमप्पा जइ होइ जयम्मि दोसजुत्तो वि।
ता भीसणरुओ पुण णिसायरो केरिसो होइ।।९९।।
अथवा स परमात्मा यदि भवति जगति दोषयुक्तोऽपि।
तर्हि भीषणरूपः पुनः निशाचरः कीदृशो भवति।।

(अहवा) अथवा (जयम्मि जइ) जगत् में यदि (सो) वह (दोसजुत्तो वि) दोषयुक्त भी (परमप्पा) परमात्मा (होइ) होता है (ता) तो फिर (भीसणरुओ णिसायरो) भीषण रूपधारी निशाचर (केरिसो) कैसा (होई) होता है?

यदि संसार में दोष युक्त को भी परमात्मा सर्वज्ञ माना जाता है तो उत्तर दीजियेगा कि भीषणाकृति पापी वह निशाचर कैसा होता है? अर्थात् ऐसा दोष युक्त जीव ही परमात्मा नहीं निशाचर है।



जो वहइ सिरे गंगा गिरिवधू वहइ अद्धदेहेण।
णिच्चं भारक्कंतो कावडिवाहो जहा पुरिसो।।१००।।
यो वहति सिरसि गंगा गिरिवधूं वहति अर्धदेहेन।
नित्यं भाराक्रान्तः कावटिकावाहो यथा पुरुषः।।
जइ एरिसो वि लोए कामुम्मत्ते वि होइ परमप्पो।१०१।।
तो कामुम्मत्तमनसः गृहे गृहे किं न परमात्मा।।

(जहा) जैसे (कावडिओ पुरिसो) कोई कावड़िया अर्थात् पानी भरने वाला पुरुष (णिच्चं भारक्कंतो) सदैव भार युक्त रहता है (तहा) वैसे ही (यो) जो (सिरे गंगा वहइ) सिर पर गंगा को धारण करता है (अद्धदेहेण गिरिवधू वहइ) आधे शरीर में पार्वती को धारण करता है अर्थात् नित्य ही शिर से पैर तक भाराक्रान्त है (जइ) यदि (एरिसो) ऐसा (कामुम्मत्तो) कामोन्मत्त (वि) भी (कामुम्मत्रणा) कामोन्मत्त पुरुष (घरे-घरे) घर-घर में (किं ण परमप्पा) क्या परमात्मा नहीं है?

सत्परीक्षा के अभाव में अज्ञानी जीव जिसने सिर पर गंगा को धारण किया है, अर्द्धांग में पार्वती को रखा है ऐसे भारवाहक पुरुषवत् शिव को, जो कामुक है उसे परमात्मा, भगवन् सर्वज्ञ मानते हैं, परन्तु यदि ऐसे कामातुर भी परमात्मा कहे जाते हैं तो घर-घर में कामोन्मत्त जीव पाये जाते हैं वे सभी भगवान परमात्मा बन जायेंगे। अतः परमात्मा का सही लक्षण स्वीकार कर सच्चे परमात्मा की आराधना करना श्रेयस्कर है।

जो दहइ एकगामं वुच्चइ लोयम्मि सो वि पाविट्ठो।
दड्ढं पि जेण तिउरं परमप्रत्तं कहं तस्स।।१०२।।
यो दहति एकग्रामं उच्चयते लोके सोऽपि पापिष्ठः।
दग्धमपि येन त्रिपुरं परमात्मत्वं कथं तस्य।।

(जो) जो (एकगामं दहइ) एक गांव को जलाता है (सो वि) वह भी (लोयम्मि) लोक में (पाविट्ठो) पापिष्ठ (वुच्चइ) कहलाता है (पि) फिर (जेण) जिसने (तिउरं दड्ढं) तीन पुर जला दिये हैं (तस्स) उसको (परमप्पतं) परमात्मापना (कहां) कैसे हो सकता है?

लोक व्यवहार में एक नगर को जलाने वाले को पापी कहने वाले जीव भी तीन पुरों को जलाने वाले शिव को परमात्मा मानते हैं यही आश्चर्य है। सत्य तो यह है कि जिसे संसार वर्द्धक तीन पुर राग-द्वेष व मोह को जला दिया है ऐसे वीतराग सर्वज्ञ ही सच्चे परमात्मा हो सकते हैं अन्य कोई नहीं।

रण्णे तवं करंतो दृट्ठण तिलोत्तमाए लावण्णं।
बम्मह सरेहिं विद्धे तवभट्टो चउमुहो जाओ।।१०३।।
अरण्ये तपः कुर्वन् दृष्टवा तिलोत्तमाया लावण्यं।
ब्रह्माशरैः विद्धः तपोभ्रष्टः चतुर्मुखो जातः।।

(रण्णे) जंगल में (तवं करंतो) तप करते हुए (तिलोत्तमाए लावण्णं दृट्ठण) तिलोत्तमा के सौन्दर्य को देखकर (सरेहिं विद्धो) कामबाण से बेधा हुआ (बम्मह) ब्रह्मा (तवभट्टो चउमुहो) तप से भ्रष्ट होकर चार मुँह (जाओ) बनाये।

जिन्होंने वन में तप करते हुए तिलोत्तमा के रूप को देखने के लिए अपने चार नेत्र बनाये। ऐसे कामोन्मत्त व्यक्ति ने स्त्री राग में अन्धा होकर तप को भी छोड़ दिया फिर भी उसे परमात्मा मानना यह कहाँ तक सत्य है?

कामग्गितत्तचित्तो इच्छयमाणो तिलोत्तमारूवं।
जो रिच्छीभत्तारो जादो सो किं होइ परमप्पो।।१०४।।
कामाग्नितप्तचित्तः इच्छन् तिलोत्तमारूपं।
य ऋक्षिभर्ता जातः स किं भवति परमात्मा।।



(कामग्गितत्तचित्तो) काम की दाह से तप्त है चित्त जिसका ऐसा वह ब्रह्मा (जो) जो (तिलोत्तमारूवं इच्छयमाणो) तिलोत्तमा के रूप की इच्छा करता हुआ (रिच्छीभत्तारो जादो) रिछनी का पति हो गया (सो) वह (किं) क्या (परमप्पो) परमात्मा (होइ) हो सकता है।

जो काम से दग्ध ब्रह्मा स्त्री रूप तिलोत्तमा की इच्छा करता हुआ तिर्यंची रिछनी में आसक्त हो गया ऐसे कामी पुरुषों को परमात्मापना कैसे हो सकता है?

जइ एरिसो वि मूढो परमप्पा वुच्चए एवं।
तो खरघोड़इया सव्वे वि य होंति परमप्पा।।१०५।।
यदि एतादृशोऽपि मूढ़ परमात्मा उच्चयते एवं।
तर्हि खराश्वादिकाः सर्वऽपि च भवन्ति परात्मनः।।

(जइ) यदि (एरिसो वि मूढ़ो) ऐसे अज्ञानी भी (परमप्पा) परमात्मा (वुच्चए) कहे जाते हैं तो (एवं) इस प्रकार (तो) पुनः (खरघोडाइया वि य सव्वे) गधा और घोड़ा आदि भी सब (परमप्पा) परमात्मा (होंति) हो जावेंगे।

यदि ऐसे पार्वती, तिलोत्तमा, रीछनी आदि में आसक्त, तपोभ्रष्ट, भाराक्रान्त भी मोक्षमार्ग के नेता/सर्वज्ञ/हितोपदेशी परमात्मा कहे जाते हैं तो फिर परमात्मा का पद इतना सरल हो जावेगा कि गधा-घोड़ा आदि तिर्यंच भी परमात्मा बन जायेंगे। तात्पर्य है कि राग, द्वेष, काम, मोह, क्षुधा और तृषा से पीड़ित जीव कभी भी परमात्मा नहीं कहला सकते हैं।

जलथलआयासयले सव्वेसु वि पव्वएसु रुक्खेसु।
तिणजलणकट्ठपाहण ईसु परिवसइ महुमहणो।।१०६।।
जलस्थालाकाशतले सर्वेषु अपि पर्वतेषु वृक्षेषु।
तृणज्वलनकाष्ठपाषाणादिसु परिवसति मधुमदः।।

(जल-थल-आयसयले) जल, स्थल, आकाश तल में (सव्वेसु पव्वएसु रुक्खेसु वि) सभी पर्वत और वृक्षों पर भी (तिण-जलण-कट्ठ-पाहणाईसु) तृण, अग्नि, काष्ठ और पत्थरों आदि में (महुमहणो) मधुमथन (परिवसइ) रहता है।

जल, थल, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष, तृण, अग्नि, काष्ठ, पत्थर आदि में मधुमथन रहता है, ऐसा मूढ़मति मानते हैं।

होऊण परमदेवो कण्हो परिवसइ जए सव्वे।
तो छेयणाइओ सो पावइ सव्वं हि किरियाओ।।१०७।।
भूत्वा परमदेवः कृष्णः परिवसति जगति सर्वस्मिन्।
तर्हि देहनादि स प्राप्नोति सर्वं हि क्रियातः।।

(परमदेओ) परमदेव (होऊण) होकर (कण्हो) कृष्ण (सव्वे जए) सम्पूर्ण लोक में (परिवसइ) रहता है। (तो) तो फिर (सव्वं हि छेयणाइओ किरियाओ) सभी छेदनक/शस्त्र क्रियाओं से युक्त (सो) वह (पावइ) पाया जाता है।

वह कृष्ण परमदेव होकर सम्पूर्ण लोक में निवास करता है तो भी वह शास्त्रादि की क्रियाओं से युक्त हो जाता है।

संसारम्मि वसंतो परमप्पो जइ जए हवे कण्हो।
संसारत्था जीवा सव्वे ते किण्ण परमप्पा।।१०८।।
संसारे वसन् परमात्मा यदि जगति भवेत् कृष्णः।
संसारस्था जीवाः सर्वे ते किं न परमात्मानः।।

(संसारम्मि वसंतो) संसार में रहते हुए भी (जइ) यदि (जए) जगत में (कण्हो) कृष्ण (परमप्पो) परमात्मा (हवे) कहलाता है तो (संसारस्था) संसार में



स्थित (सव्वे जीवा) सभी जीव (किण्ण परमप्पा) क्या परमात्मा नहीं कहे जायेंगे।

गोपियों के साथ रासरंग करने में आसक्त ऐसे कृष्ण को संसार में रहते हुए भी अज्ञानी लोग उन्हें संसारावस्था में भी भगवान/परमात्मा कहते हैं। विचारणीय चर्चा यह है कि जब कृष्ण संसारस्थित होकर भी परमात्मा कहे जाते हैं तो संसार के सर्व जीव परमात्मापने को क्यों कहलायेंगे अतः इस दुःआशय को दूर हटाने के लिए वीतरागता को ही परमात्मापना स्वीकार करना युक्ति संगत है।

हरिहरबम्हणो वि य महाबला सव्वेलोयविक्खादा।
तिण्णि वि एक्कसरीरा तिण्णि वि लोए परमप्पा।।१०९।।
हरिहरब्रह्मणोऽपि च महाबला सर्वलोकविख्याताः।
त्रयोऽपि एकशरीराः त्रयोऽपि लोकेऽपि परमात्मनः।।

(महाबला) महान बलवान (सव्वलोयविक्खादा) सर्वलोक प्रसिद्ध (एक्कसरीरा) एक ही खून की संतान (हरिहरब्रह्मणो वि य) विष्णु, शिव और ब्रह्मा (तिण्णि वि) तीनों ही (तिण्णि वि लोए) त्रिलोक में परमात्मा कहलाते हैं।

तात्पर्य यहाँ यह है कि वर्तमान में लोगों ने जिन्हें देव मान रखा है, उन्हें नाचने, सोने व स्त्री सम्बन्धी राग आदि से ही फुर्सत नहीं है। विचार कीजिए, भला वे कैसे मोक्षमार्ग के प्रणेता हो सकते हैं? विष्णु शेषनाग के शरीर रूप शय्या पर मुख को खोलकर सोते हैं। शिव (महादेव) पार्वती को अर्द्धांग में धारण किये हैं और ब्रह्माजी सुन्दर तिलोत्तमा नामक देव अप्सरा के मनोहर रूप को देखने के लिए चार मुख वाले बने। इन तीनों हरि, हर, ब्रह्मा को भी जगत के जीव परमात्मा मोक्षमार्ग के उपदेष्टा मानते हैं। यह बड़ी विचित्र बात है।

जइ होहि इयमुत्ती बम्हाण तिलोयणाह महुमहणो।
तो बम्हाणस्स सिरं हरेण किं कारणं छिण्णं।।११०।।

यदि भवति एकमूर्तिः ब्रम्हा त्रिलोकनाथः मधुमदः।
तर्हि ब्रम्हणः शिरो हरेण किं कारणेन छिन्नम्।।

(जइ) यदि (एयमुत्ती) एक मूर्ति (बम्हाय) ब्रह्मा (तिलोयण्ण्ह) त्रिलोक नाथ (महुमहणो) मधुमथन (होहि) हो (तो) तो (बम्हाणस्स) ब्रह्मा के (सिरं) सिर को (हरेण) शिव के द्वारा (किं कारणं छिण्णं) किस कारण से छिन्न किया।

यदि मधुमदन एकमूर्ति, ब्रह्मा, त्रिलोक नाथ हो तो आपके ही मत में ब्रह्मा के सिर को शिव के द्वारा किस कारण से छिन्न किया गया।

णेच्छइ थावरजीवं जंगमजीवेसु संसओ जस्स।
मंसं जस्स अदोसं कह बुद्धो होइ परमप्पा।।११९।।
नेच्छति स्थावरजीवं जंगमजीवेषु संशयो यस्य।
मांसं यस्यादोषं कथं बुद्धो भवति परमात्मा।।

(जस्स) जिसके सिद्धान्त में (थावरजीवं जंगमजीवेसु) स्थावर व त्रस जीवों में (संशयोणेच्छइ) संशय नहीं है अर्थात् कोई भेद नहीं है। (जस्स) जिसके यहाँ (मंसं अदोसं) मांस को निर्दोष कहा गया (ऐसा) (बुद्धो) बुद्ध (कहं) किस प्रकार (परमप्पा) परमात्मा (होइ) हो सकता है।

जिनके मत में क्षणिकवाद का बोलबाला है। त्रस व स्थावर जीवों की अवस्था का कोई निर्णय ही नहीं है। मांस को निर्दोष मानकर भक्षण किया जाता है। ऐसा हिंसा को जगाने वाले 'बुद्ध' परमात्मा कैसे कहला सकते हैं? आश्चर्य है कि मांस भक्षण के उपदेश मोक्षमार्ग के प्रणेता कैसे हो सकते हैं? फिर भी सभ्य शिक्षित वर्ग भी बुद्ध को परमात्मा कहते हैं। परीक्षितव्यंपरीक्षितव्यं सत्य की परीक्षा अवश्य करनी चाहिए।



णियजणणीए पेट्टं जो फाडिऊण णिग्गओ बहिरं।
अण्णेसिं जीवाणं कह होइ दयावरो बुद्धो।।११२।।
निजजनन्यां उदरं यो विदार्य निर्गतो बहिः।
अन्येषां जीवानां कथं भवति दयापरो बुद्धः।।

(जो) जो (णियजणणीए पेट्टं) अपनी माता के पेट (उदर) को (फाडिऊण) फाड़कर (बाहिरं) बाहर (णिग्गओ) निकले (ऐसे) (बुद्धो) बुद्ध की (अण्णेसि जीवाणं) अन्य संसारी जीवों के प्रति (दयावरो) दयालुता (कह होइ) कैसे हो सकती है।

"धम्मस्स मूलं दया" धर्म का मूल दया है। कहा जाता है कि बुद्ध अपनी माता के पेट को फाड़कर बाहर निकले अर्थात् जिन्हें अपनी माँ के लिए भी दया नहीं आई वे अन्य जीवों के लिए दया कैसे कर सकते हैं? जहाँ निर्दयता है वहाँ परमात्मपना कैसे बन सकता है? तात्पर्य है कि निर्दयी बुद्ध को परमात्मा मानना युक्तिसंगत नहीं है।

जो अप्पणो सरीरे ण समत्थो वाहिवेयणा छेउं।
अण्णेसिं जीवाणं कह वाहिं णासए सूरो।।११३।।
यः आत्मनः शरीरे न समर्थो व्याधिवेदना छेत्तुम्।
अन्येषां जीवानां कथं व्याधिं नाशयति सूरः।।

(जो) जो (अप्पणो सरीरे) अपने शरीर में होने वाली (वाहिवेयणा) रोगों की वेदना को (छेउं) दूर करने के लिए (समत्थो) समर्थ (ण) नहीं है (ऐसा) (सूरो) सूर्य देव (कहं) किस प्रकार (अण्णेसिं जीवाणं) दूसरे जीवों की (वाहिं) व्याधि को (णासए) नाश करता है।

कथन का तात्पर्य है कि लौकिक में सूर्य को देव, परमात्मा माना जाता है, परन्तु आश्चर्य है कि जो स्वयं के शरीर में होने वाले रोगों को भी दूर करने में असमर्थ है ऐसा देव परमात्मा बनकर दूसरों के रोग, शोक, आधि, व्याधि

आदि कैसे दूर कर सकता है? अर्थात् कभी नहीं।

ण समत्थो रक्खेउं सयमवि खे राहुणा गसिज्जंतो।
कह सो होइ समत्थो रक्खेउं अण्णजीवाणं।।११४।।
न समर्थों रक्षितुं स्वयमपि खे राहुना ग्रसमानः।
कथं स भवति समर्थों रक्षितुं अन्य जीवान्।।

(खे) आकाश में (राहुणा) राहु के द्वारा (गसिज्जंतो) ग्रसित हुआ सूर्यदेव (सयमवि) स्वयं की भी (रक्खेउं) रक्षा करने के लिए (समत्थो) समर्थ (ण) नहीं है (सो) वह (अण्णजीवाणं) अन्य जीवों की (रक्खेउं) रक्षा करने के लिए (समत्थो) समर्थ (कहं) कैसे (होइ) सकता है?

गगनमण्डल में सूर्य, राहु, केतु, चन्द्र बुध आदि ज्योतिषी देव निरन्तर सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करते हैं। जिस समय सूर्य के विमान पर राहु के विमान की छाया पड़ती है, उस अवस्था में ऐसा माना जाता है कि सूर्यग्रहण हो गया है अथवा सूर्य को राहु ने ग्रस लिया है। फलतः अव्युत्पन्नमति लौकिक जन सूर्यग्रहण को एक दोष मानकर सूतक आदि मानने की क्रिया को अशुभ मानते हैं। आश्चर्य है कि देवता/परमात्मा कहलाने वाला जो सूर्यदेव एक छोटे से ज्योतिषी देव राहु से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता है। वह अन्य संसारी जीवों के दुःखों को दूर कैसे कर सकता है? जो दुःखी है, रोगी है वह परमात्मा कैसे हो सकता है? कभी नहीं।

जइ तं हवंति देवा एए सव्वे वि हरिहराईया।
तो तिक्खपहराणाइं गिण्हंति करेण णिक्कज्जं।।११५।।
यदि ते भवन्ति देवा एए सव्वे वि हरिहरादिकाः।
तर्हि तीक्ष्णप्रहरणानि गृहणन्ति करेण निष्कार्यं।।

(जइ) यदि (ते हरिहराईया) वे हरि, हर आदिक (एए सव्वे वि देवा) ये सभी देव (हवंति) हैं (तो) तो (तिक्खपहरणाइं) तीक्ष्ण शस्त्रों को (करेण)



हाथ में (णिक्कज्जं) निष्प्रयोजन (गियहंति) ग्रहण करते हैं।

यदि हरि, हर आदि सभी देव अर्थात् सर्वज्ञ भगवान कहलाते हैं तो सर्वज्ञ तो अनन्त शक्तिमान हैं फिर ये तीक्ष्ण शस्त्रों को अपने हाथों में क्यों ग्रहण करते हैं? इससे सिद्ध होता है कि हरि, हरादिकों के देव/सर्वज्ञपना नहीं हैं, क्योंकि उनमें अनन्त शक्ति का अभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

जस्स त्थि भयं वि चित्ते सो गिण्हइ आउहं करग्गेण।
जस्स पुणो णत्थि भयं तस्समआउहउहकारणं णत्थि।।११६।।
यस्यास्ति भयं चित्ते स गृहणाति आयुधं कराग्रेण।
यस्य पुनर्नास्ति भयं तस्यायुधकारणं नास्ति।।

(जस्स) जिसके (चिते) चित्त में (भयं) भय (सो) वह (वि) ही (करग्गेण) हाथों के अग्र भाग में (आउहं) आयुध को (गिण्हइ) ग्रहण करता है (जस्स) जिसके (चित्ते) चित्त में (भयं) भय (णत्थि) नहीं है (तस्सआउहकारणं णत्थि) उसके लिए आयुध रखने का कोई कारण ही नहीं है (पुणो) पुनः (जस्स) जिसके हृदय में (भयं) भय (णत्थि) नहीं है।

कारण के बिना कार्य कभी नहीं देखा जाता। बीज के बिना धान्य तथा फूल के बिना जैसे फल। हरि, हर आदि देवों के हाथों में त्रिशूल, दण्ड, सोठा आदि देखे जाते हैं। तो हम आपसे पूछते हैं कि क्या आपके परमात्मा को शत्रु का भय लगा है। यदि आप कहते हैं कि नहीं, तो बताइये कि भय नहीं है तो उनके हाथों में शस्त्र क्यों हैं? यदि आप कहते हैं शस्त्र तो वीरता के प्रतीक हैं तो पुनः आप बताइये वीरों को भय किसका? अर्थात् आपके परमात्मा के हृदय में शत्रु का भय सदैव बना हुआ है? इसीलिए उनके हाथों में शस्त्र हैं, परन्तु जो परमात्मा सर्वज्ञ होता है वह निर्भय होता है और जो निर्भय है उसे हथियारों को अपने साथ रखने की आवश्यकता कभी नहीं होती है।

छुहतण्हवाहिवेयणचिंताभयसोयपीडियसरीरा।
संसारे हिंडंता ते सव्वण्हू कहं होंति।।११७।।
क्षुधातृषाव्याधिवेदनाचिन्ताभयशोकपीड़ितशरीराः।
संसारे हिंडमानाः ते सर्वज्ञाः कथं भवन्ति।।

(छुहतण्हवाहिवेयणचिंताभयसोयपीडियसरीरा) क्षुधा, तृषा, रोग, वेदना, चिन्ता, भय, शोक शारीरिक पीड़ा से पीड़ित (संसारे) दुःखमय संसार में (हिंडता) घूमने वाले (ते) वे हरिहरादिक (सव्वण्हू) सर्वज्ञ (कहं) किस प्रकार (होंति) हो सकते हैं।

संसारी जीवों के समान जिनको निरन्तर भूख-प्यास, रोग, वेदना, चिन्ता, भय, शोक, शारीरिक पीड़ायें लगी रहती हैं तथा जो संसार में परिभ्रमण कर रहे हैं ऐसे रागी-द्वेषी हरिहरादिक सर्वज्ञ परमात्मा कैसे हो सकते हैं? अर्थात् कभी नहीं।

छुह तण्ह भय दोसो राओ मोहो य चिंतणं वाही।
जर मरण जम्म णिद्दा खेदो सेदो विसादो य।।११८।।
क्षुधा तृषा भयं दोषो रागो मोहश्च चिन्ता व्याधिः।
जरा मरणं जन्म-निद्रा खेदः स्वेदो विषादश्च।।
रइ जिंभओ य दप्पो एए दोसा तिलोयसत्ताणं।
सव्वेसिं सामण्णा संसारे परिभमंताणं।।११९।।
रतिर्जृंभा च दर्प एते दोषाः त्रिलोकसत्वानाम्।
सर्वेषां सामान्याः संसारे परिभ्रमताम्।।

(संसारे परिभमंताणं) संसार में परिभ्रमण करते हुए (तिलोयसत्ताणं सव्वेसिं) तीन लोक के समस्त जीवों के (छुह-तण्ह-भय-दोसो राओ मोहो य चिंतणं वाही) भूख, प्यास, भय, द्वेष, राग, मोह, चिन्ता, व्याधि, बुढ़ापा, मरण, जन्म, निद्रा, दुःख या आलस्य, पसीना, खिन्नता, स्नेह (खुशी) जम्हाई लेना



और घमंड (एए दोसा) ये अठारह दोष (सामाण्णा) सामान्य रूप से पाये जाते हैं।

क्षुधा, पिपासा, भय, द्वेष, राग, मोह, चिन्ता, रोग, जरा, मरण, जन्म, निद्रा, दुःख, पसीना, खिन्नता, स्नेह, जम्हाई और घमंड ये दोष तीन लोक में सभी संसारी जीवों में सामान्य रूप से पाये जाते हैं। फिर ये ही दोष सर्वज्ञ परमात्मा में भी पाये जाते हैं तो फिर संसारी जीव व सर्वज्ञ में भेद ही क्या रह जायेगा? तात्पर्य यह है कि अठारह दोष जिसमें पाये जाते हैं ऐसे 'हरि, हर, ब्रह्मा, महेश, सूर्य, चन्द्र" कोई भी हों वे सर्वज्ञ परमात्मा नहीं कहे जा सकते हैं।

एए सव्वे दोसा जस्स ण विज्जंति छुहतिसाईया।
सो होइ परमदेओ णिस्संदेहेण घेत्तव्वो।।१२०।।
एते सर्वे दोषा यस्य न विद्यन्ते क्षुधातृषादिकाः।
स भवति परमदेवो निःसन्देहेन गृहीतव्यः।।

(छुहतिसाईया) भूख-प्यास आदिक (एए सव्वे दोसा) ये अठारह दोष (जस्स) जिसके (ण विज्जंति) विद्यमान नहीं होते हैं (णिस्संदेहेण) निःसन्देह (सो परमदेओ) वह परमदेवता अर्थात् देवाधिदेव (होइ) होता है (घेत्त्व्वो) पूजनीय, सेवनीय या उपासनीय ग्रहण करना चाहिए।

जिन धर्म गुणों का उपासक है व्यक्ति विशेष का नहीं। वीतरागी/सर्वज्ञ/हितोपदेशी कोई भी हो, हरि, ब्रह्मा या हर, महेश अथवा महावीर पूज्यनीय हैं। राग-द्वेष आदि दोष युक्त ये ही नामधारी अपूज्य असर्वज्ञ हैं।

सिंहासणछत्तत्तयदिव्वझुणिपुप्फविट्ठिचमराइं।
भामंडलदुंदुहिओ वरतरु परमेट्ठिचिण्हूत्थं।।१२१।।
सिंहासनच्छत्रत्रयदिव्यध्वनिपुष्पवृष्टिचामराणि।
भामंडलदुंदुभी वरतरुः परमेष्ठिचिन्होत्थानि।।

(सिंहासणछत्तत्तयदिव्वझुणिपुप्फविट्ठिचमराइंभामंडलदुंदुहिओ वरतरु) सिंहासन, तीन छत्र, दिव्यध्वनि, पुष्पवृष्टि, चौंसठ चँवर, भामंडल, दुंदुभीनाद और कल्पवृक्ष ये आठ प्रातिहार्य (परमेट्ठिचिण्हूत्थं) परमेष्ठी पद की प्राप्ति के चिन्ह हैं।

सिंहासन, तीन छत्र, दिव्यध्वनि, पुष्पवृष्टि, चौंसठ चंवर, भामंडल, दुंदुभीनाद, कल्पवृक्ष ये अर्हन्त पद प्राप्ति के चिन्ह हैं।

संपुण्णचंदवयणो जडमउडविवज्जिओ णिराहरणो।
पहरणजुवइविमुक्को संतियरो होइ परमप्पा।।१२२।।
सम्पूर्ण चन्द्रवदनः जटामुकुटविवर्जितो निरभरणः।
प्रहरणायुवतिविमुक्तः शान्तिकरो भवति परमात्मा।।

(संपुण्णचंदवयणो) पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान चन्द्रमुखी (जडमउडविवज्जिओ) जटा-मुकुट से रहित (णिराहरणो) आभूषण से रहित (पहरणजुवइविमुक्को) शस्त्र आयुधादि से रहित, स्त्री से रहित (संतियरो) शान्ति को करने वाले (परमप्पा) परमात्मा (होइ) होते हैं।

परमात्मा का स्वरूप बताते हुए उनका दिग्दर्शन करते हैं। पूनम के चन्द्रसम मुख वाले, जटा, मुकुट, आदि बाह्य आडम्बरो से रहित, केयूर-कुण्डल आदि से रहित, जिनका शरीर स्वयं अतिशय सुन्दर है। अतः आभूषणों की जिन्हें आवश्यकता ही नहीं रह गई है तथा शत्रु रहित, निर्भय होने से जिन्हें किसी आयुध की आवश्यकता ही नहीं है, एवं शाश्वत शिव रमणी के प्रियतम होने से स्त्री की जिनके ह्य में कांक्षा ही नहीं है ऐसे अतिशय रूपवान, सुगन्धित शरीरधारी, निराभरण, निर्वस्त्र, स्त्री विमुक्त ऐसे त्रिलोक में शान्ति करने वाले परमात्मा होते हैं।



णिब्भूसणो वि सोहइ कोहो रामभओमाणो णत्थि।
जम्हा वियाररहिओ णिरंबरो मणोहरो तम्हा।।१२३।।
निर्भूषणोऽपि शोभते कोधो राग-भय-मानो नास्ति।
यस्माद्विकाररहितो निरम्बरो मनोहर स्तस्मात्।।

वे परमात्मा कैसे हैं? (णिब्भूसणो वि सोहइ) आभूषण रहित होने पर भी शोभायमान होते हैं, (कोहो रागभओमाणो णत्थि) जिनमें क्रोध, राग, भय और मान नहीं है (जम्हा वियाररहिओ णिरंबरो) क्यों कि वे विकार रहित हैं। अतः वस्त्र रहित निरम्बर हैं (तम्हा) इसलिए (मणोहरो) मनोहर हैं।

लौकिक जन शारीरिक सौन्दर्य वृद्धि के लिए सोना, चाँदी, मोती आदि पुद्गल पाषाण के आभूषणों को पहनते हैं, पर जो स्वयं आभूषणों से रहित भी शोभायमान होते हैं, राग, द्वेष, क्रोध, मान जिनमें नहीं है। निरम्बर हैं क्योंकि विकार रहित हैं। संसारी जीव विकार को छिपाने के लिए वस्त्र धारण करते हैं, पर जहाँ विकार नहीं हैं वहाँ वस्त्रों की आवश्यकता ही क्या है? इसलिए मनो मन को सतत् हरण करने वाली ऐसे निर्भूषण, निष्क्रोध, निराग, निर्भय, निर्मान, निर्विकार, निरम्बर परमात्मा होते हैं।

जम्हा सो परमसुही परमसिवो वुच्चए जिणो तम्हा।
देविंदाण वि देओ तम्हा णामं महादेओ।।१२४।।
यस्मात् स परमसुखी परमशिव उच्यते जिनस्तस्मात्।
देवेन्द्राणामपि देवस्तस्मानाम्ना महादेव।।

(जम्हा) क्योंकि (सो) वह (जिणो) "जिन" (परमसुही) अनन्त सुख का स्वामी है अर्थात् अनन्त सुखी है (तम्हा) इसलिए (परमसिवो) "परमशिव" है (तथा वह जिन) (देविंदाण वि देओ) देवों का भी देव है (तम्हा) इसलिए (महादेओ णामं) महादेव उसी का नाम है।

वास्तविकता में विचार किया जावे तो सत्यता यही है कि शिव या

महादेव नाम का कोई दूसरा परमात्मा या सर्वज्ञ इस संसार अथवा तीन लोक में नहीं है। परमशिव या महादेव ये 'जिन' के ही पर्यायवाची अपर नाम हैं।

वे वीतरागी परम जिन परमात्मा अनन्त चतुष्टय के धारक परमसुखी हैं। इसीलिए उनका अपर नाम 'परमशिव' कहा जाता है तथा जिनदेव देवाधिदेव हैं अर्थात् कुदेव, अदेव व देवगति के देव इन सब में महान होने से जिनेन्द्र वीतरागी सर्वज्ञ परमात्मा का ही अपर नाम 'महादेव' है।

लौकिक जीवों ने जो शिव या महादेव की भिन्न कल्पना की है यह मात्र उनकी अज्ञानता का ही प्रारूप है।

अव्वावाहमणंतं जम्हा सोक्खं करेइ जीवाणं।
तम्हा संकरणामो होइ जिणो णत्थि संदेहो।।१२५।।
अव्याबाधमनन्तं यस्मात् सुखं करोति जीवानां।
तस्माच्छंकरनामा भवति जिनो नास्ति सन्देहः।।

(जम्हा) क्योंकि (जिणो) जिन सर्वज्ञ परमात्मा (जीवाणं) जीवों को (अव्वावाहमणंतं सोक्खं) अव्याबाध-अनन्त सुख को (करेइ) प्रदान करता है (तम्हा) इसलिए (उनका) (संकरणामो) "शंकर" नाम (होइ) होता है (णत्थि संदेहो) इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

यहाँ शंका उठ सकती है- सर्वज्ञ वीतरागी हैं फिर जीवों को अव्याबाध सुख कैसे देते हैं? समाधान-जो अरहन्तादि पंचपरमेष्ठी हैं वे संसार के किसी भी जीव को सुख या दुःख आदि कुछ भी देते नहीं हैं, क्योंकि वे "वीतरागी" हैं। प्रत्येक स्वकृत शुभ-अशुभ कर्मों का विपाक समयानुसार भोगता है। फिर भी जिनधर्म अनेकान्त धर्म है। आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी मूलाचार में लिखते हैं।

अरहंतणमोक्कारं भवेण य जो करेदि पयदमदी।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावइ अचिरेण कालेण।।५०६।।



जो प्रयत्नमति भव्य अरहंत देव को एक बार भी श्रद्धा पूर्वक नमस्कार करता है वह बहुत ही अल्पकाल में सर्वदुःखों से मुक्त होकर अव्याबाध अनन्त सुख को प्राप्त कर लेता है। इसी संदर्भ से यहाँ पर जिनभक्ति की महिमा बताते हुए आचार्य श्री ने विशिष्टता दिखाई है।

अर्थात् जिन सर्वज्ञ परमात्मा में की जाने वाली भक्ति, श्रद्धा, और विनय बाधा रहित अनन्त सुख को देते हैं। अतः तीन लोक के जीवों को "शम करोति इति शंकरः" सुख-शान्ति करने वाले होने से "जिन" का ही अपर नाम शंकर है। "जिन" से भिन्न "शंकर" नाम का कोई दूसरा देवता या सर्वज्ञ अन्य कोई नहीं है।

लोयलोयविदण्हू तम्हा णामं जिणस्स विण्हूत्ति।
जम्हा सीयलवयणो तम्हा सो वुच्चए चंदो।।१२६।।
लोकालोकवित् तस्मात् नाम जिनस्य विष्णुरिति।
यस्माच्छीतलवचनस्तस्मात् स उच्यते चन्द्रः।।

वे जिन, सर्वज्ञ, परमात्मा (लोयालोयविदण्हू) लोक-आलोक को जानने वाले हैं (तम्हा) इसलिए (विण्हूति) विष्णु यह (णामं) नाम (जिणस्स) "जिन देव" का है तथा (जम्हा) क्योंकि (उनका) (सीयलवयणो) शीतल वचन चन्द्रमा की चाँदनी की तरह भव्यजीवों के हृदय को आल्हादित करता है (तम्हा) इसलिए (सो) उन जिन को (चंदो) चन्द्र कहते हैं।

"जिन" सर्वज्ञ त्रिकालावर्ती लोक-अलोकवर्ती समस्त पदार्थों को युगपत हाथ में रखे आंवले की तरह (हस्तअमलकवत्) जानते हैं। इसलिए जिनका ज्ञान सर्वव्यापी है, ऐसे जिन का ही दूसरा नाम विष्णु है। जिन देवाधिदेव की अमृतवाणी शीतल कर्णप्रिय हितंकरी है। इसलिए इन्हीं का दूसरा नाम चन्द्रदेव है। अर्थात् "देवाधिदेव जिन" से भिन्न विष्णु या चन्द्र नाम का अन्य कोई सर्वज्ञ परमात्मा इस पृथ्वी पर न है न हुआ। ये सब जिनदेव के ही गुणकृत भिन्न-भिन्न नाम हैं।

अण्णाणाण विणासो विमलाण विसुद्ध बोहयरो।
कम्मासुर णिद्दहणो तेण जिणो वुच्चए सूरो।।१२७।।
अज्ञानानां विनाशकः विमलानां विशुद्ध बोहयरो।
कर्मा सुर निर्दहनः तेन जिन उच्यते सूरः।।

(अण्णाणाण) अज्ञान के (विणासो) विनाशक (विमलाण) मल से रहित होने से (विसुद्ध-बोहयरो) विशुद्ध बोध प्रदायक हैं। (कम्मासुर-णिद्दहणो) कर्म रूपी असुरों का दलन करने वाले हैं। (तेण) इसलिए (सूरो) सूर्य (वुच्चए) कहलाता है।

अज्ञान रूपी अन्धकार के विनाशक, घातिया कर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय से रहित होने से विमलता प्रदायक, बोध प्रदायक, कर्मरूपी असुरों के दाहक वे सूर्य जिन कहलाते हैं।

अण्णाणमोहिएहिं य पंचेंदियलोलुएहिं पुरिसेहिं।
जिणणामाइं परेसिं कयाइं गुणवज्जियाणं पि।।१२८।।
अलानमोहितैश्च पंचेन्द्रियलोलुपैः पुरुषैः।
जिननामानि परेषां कृतानि गुणवर्जितानामपि।।

(य) और (अण्णाणमोहिएहिं) अज्ञान से मोहित हुई है बुद्धि जिनकी ऐसे (पंचेन्द्रियलोलुएहिं) पंचेन्द्रिय विषयों के लोलुपी विषयासक्त (पुरिसेहिं) पुरुषों के द्वारा (परेसिं) दूसरे (गुणवज्ज्याणंपि) वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी आदि गुण रहितों को भी (जिणणामाइं) "जिन" ऐसे नाम (कयाइं) कर दिये गये।

सदा ज्ञान से हीन अज्ञानान्धकार से आच्छादित बुद्धि वाले मोही, विषय लोलुपी पुरुषों ने सर्वज्ञ परमात्मा के गुणों से रहित रागी, द्वेषी, कामी और लम्पटी को भी "जिन" नाम दे दिया। यह कलयुग का ही प्रभाव जानना



चाहिए।

जइ ईसरणाम णरो भिक्खं भमिऊण भुंजए को वि।
ईसरस्स गुणविहूणो किं सच्चं ईसरो होई।।१२९।।
यदि ईश्वरनामा नरः भिक्षां भ्रमित्वा भुंक्ते कोऽपि।
ईश्वरस्य गुणविहीनः किं सत्यं ईश्वरो भवति।।

(जइ) यदि (को वि) कोई भी (ईसरणाम णरो) ईश्वर नाम का मनुष्य (भमिऊण भिक्खं भुंजए) भ्रमण करके शिक्षा को ग्रहण करता (परन्तु) (ईसरस्स) ईश्वर या परमात्मा के (गुणविहूणो) गुणों से रहित है (किं) (सो) क्या वह (सच्चं) सच्चा, यथार्थ (ईसरो होइ) ईश्वर हो सकता है?

"को वन्दे गुणहीनं" गुणहीन की कोई वन्दना नहीं करता है। संसार में यदि कोई भी मनुष्य अपना नाम "ईश्वर" रख ले और भिक्षुक बनकर भिक्षावृत्ति से भोजन करे पर उसमें ईश्वर के गुण नहीं हैं तो वह क्या यथार्थ ईश्वर कहला सकता है? कभी नहीं। इसी प्रकार दुनियां के कोई भी व्यक्ति विविध रूप या स्वांग धारणकर अपने आपको चाहे परमात्मा शिव कहें, ब्रह्मा कहें, विष्णु, महादेव कहें परन्तु यदि उनमें यथार्थ गुण नहीं है न क्षुधादि अठारह दोष मौजूद हैं। राग-द्वेष, काम, मोह आदि विद्यमान हैं तो वह कभी भी परमात्मा, ईश्वर के गुणों को प्राप्त नहीं हो सकता। मात्र नाम से यहाँ कोई प्रयोजन नहीं, यहाँ गुणों की पूज्यता है।

सव्वण्हूणाम हरी तह लोए हरिहराइया सव्वे।
सव्वण्हुगुणविरहिया किं सव्वे होंति सव्वण्हू।।१३०।।
सर्वज्ञानामा हरिः तथा लोके हरिहरदिकाः सर्वः।
सर्वज्ञगुणविरहिताः किं सर्वे भवन्ति सर्वज्ञाः।।

(तह) उसी प्रकार (सव्वण्हूणाम हरी) सर्वज्ञनामधारी हरि कहा जाता

है तो (लोए) लोक में (हरिहराइया सव्वे) हरि, हर आदिक सभी (सव्वण्हुगुणविरहिया) सर्वज्ञ के गुणों से रहित भी (सव्वे) सब (किं) क्या (सव्वण्हू) सर्वज्ञ (होंति) होते हैं।

उसी प्रकार किसी पुरुष ने अपना नाम सर्वज्ञ रख लिया तो क्या? सर्वज्ञ के गुणों से रहित भी वह हरि है क्या? यदि हाँ! तो सर्वज्ञ नाम धारी सभी हरि, हर आदि सर्वज्ञ को प्राप्त हो जायेंगे। परन्तु हम आपसे यह पूछते हैं कि क्या सर्वज्ञ के गुण से रहित भी सर्वज्ञ होते हैं?

तात्पर्य है कि मात्र सर्वज्ञ नाम रखने से कोई हरि, हर आदि देव नहीं कहला सकता है? सर्वज्ञ के गुणों से हीन कोई भी सर्वज्ञ नहीं कहा जा सकता? सर्वज्ञता के लिए वीतरागता, निर्दोषता आवश्यक है।

जइ इच्छय परमपयं अव्वावाहं अणोवमं सोक्खं।
तिहुवणवंदियचलणं णमह जिणिंदं पयत्तेण।।१३१।।
यदि इच्छति परमपदं अव्याबाधं अनुपमं सौख्यं।
त्रिभुनवंदितचरणं नमत जिनेन्द्रं प्रयत्नेन।।

(जइ) यदि (परमपयं) परमपद-सिद्धपद को (अव्वावाहं अणोवमं सोक्खं) बाधा रहित अनुपम सुख को (इच्दय) चाहते हो तो (तिहुवणवंदियचलणं) त्रिभुवन के जीवों के द्वारा वन्दित है चरण जिनके, ऐसे किनको? (जिणंदं) जिनेन्द्र को (पयत्तेण) प्रयत्नपूर्वक (णमह) नमस्कार करो।

त्रिलोक में उत्कृष्ट पद कौन-सा है? सिद्ध पद से बढ़कर अन्य पद कोई भी उत्कृष्ट नहीं है। कारण सभी चक्रवर्ती, राजा, धरणेन्द्र, सुरेन्द्र के पद इन्द्रियसुखों के पोषक व क्षणिक हैं। चक्रवर्ती, तीर्थंकर भी जिस पद में नमन करते हैं, वह परमपद सिद्धपद है। सिद्धावस्था का सुख बाधा रहित अनुपम है। महानुभावों! यदि तुम परमपद व शाश्वत, अनुपम सुख चाहते हो तो त्रिलोकीनाथ जिनेन्द्र देव के चरणारविन्दों में प्रयत्यशील होकर नमस्कार करो।



जम्हा अरिहंत हवइ णिराउहो णिब्भयो हवे तम्हा।
जम्हा हु अणंतसुो इच्छीविरहिओ हवे तम्हा।।१३२।।
यस्मात् अर्हन भवति निरायुधः निर्भयो भवेत् तस्मात्।
यस्माद्वि अनन्तसुखं स्त्रीविरहतो भवेत तस्मात्।।

(जम्हा) क्योंकि (अरिहंत) अरहन्त/सर्वज्ञ (णिब्भयो) निर्भय (हवे) होते हैं (तम्हा) इसलिए (णिराउहो) आयुध से रहित (हवइ) होते हैं। (जम्हा) क्यों कि (हु) निश्चय ही (वे) (इच्छीविरहिओ) स्त्री सुख से रहित अर्थात् स्त्री के प्रति विरक्त (हवे) होते हैं (तम्हा) इसीलिए (अणंतसुहे) अनन्तसुखी होते हैं।

अरहंत भगवान के हाथों में कहीं आयुध/शस्त्र नजर नहीं आता है। उन्हें तीन लोक में किसी भी व्यक्ति या वस्तु से कोई भय नहीं है। दूसरी बात तीन लोक में उनका कोई शत्रु भी नहीं है। जिसका शत्रु हो, जिसे भय हो उसे हथियार की आवश्यकता होती है। निर्भय, निःशंक विचरण करने वाले के लिए नहीं। स्त्री सुख क्षणिक है तथा वे रोगों की जड़ हैं, ऐसे सुख के त्यागी ब्रह्मचर्य के धारक अरहंत मुक्तिरमणी के प्रियतम होने से अनन्तसुखी हैं।

जम्हा छुहतण्हाओ तस्स ण पीडंति परमघोराओ।
तम्हा असणं पाणं तिलोयणाहो ण सेवेइ।।१३३।।
यस्मात् क्षुतृष्णे तं न पीड़यतः परमघोरे।
तस्मादसनं पानं त्रिलोकनाथो न सेवते।।

(जम्हा) क्योंकि (परमघोराओ) भयानक ऐसी (छुहतण्हाओ) भूख-प्यास (तस्स) उन अरहंत भगवान को (पीडंति) पीड़ित (ण) नहीं करते है (तम्हा) इसलिए (तिलोयणाहो) त्रिलोकीनाथ (असणंपाणं) भोजन-पानी को (ण) नहीं (सेवेइ) सेवन करते हैं।

भोजन पानी आदि कवलाहार की आवश्यकता ही अरहंत देव को नहीं होती है। आठ वर्ष कम एक कोटि पूर्व तक अरहन्त कवलाहार से रहित

रहते हैं। (अधिक से अधिक) प्रश्न उठ सकता है कि "अन्न के बिना इतने समय तक शरीर कैसे टिकता है? " समाधान..... अरहंत भगवान के भूख-प्यास की बाधायें किंचित भी सताती नहीं हैं। अतः वे भोजन को जरा भी ग्रहण नहीं करते हैं। पुण्य का उदय पराकाष्ठा पर होने से निरन्तर शुभ वर्गणायें आती हैं, जो उनके शरीर की स्थिति में सहायक होती हैं। इसीलिए कहा गया है कि अरहन्त देव के "कवलाहार नहीं होता है" कर्म व नोकर्म आहार होता है।

कोई मतावलम्बी ऐसा मानते हैं कि अरहंत देव के कवलाहार होता है, पर जो इस प्रकार कहते हैं वे अरहन्त देव का अवर्णवाद करते हैं।

पूजारिहो दु जम्हा घरणिंदणरिंदसुरवरिंदाणं।
अरिरयरहस्समहणो अरहंतो वुच्चए तम्हा।।१३४।।
पूजार्हस्तु यस्मात् धरणेन्द्र-नरेन्द्र सुरवरेन्द्राणाम्।
अरिरजरहस्यमथनः अर्हन उच्यते तस्मात्।।

(जम्हा) क्यों कि (वे सर्वज्ञ जिन) (धरणिंदणरिंदसुरवरिणंदाणं पूजारिहो) धरणेन्द्र, नरेन्द्र, सुरेन्द्रों के द्वारा पूजा के योग्य हैं (दु) और (उन्होंने) (अरिरयरहस्समहणो) मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय तथा अन्तराय कर्मों का क्षय कर दिया है (तम्हा) इसलिये (अरहंतो) अरहंत (वुच्चए) कहे जाते हैं।

क्षुधादि बाधाओं से रहित त्रिलोकीनाथ, निर्दोष, वीतरागी, सर्वज्ञ, परमात्मा के चरण कमल धरणेन्द्र, चक्रवर्ती व सुरेन्द्रों के द्वारा पूजित हैं तथा उन्होंने चार घातिया कर्मरूप शत्रुओं का क्षय अहिंसा के द्वारा किया है इसलिये "अरहन्त" कहलाते हैं।

जियकोहो जियमाणो जियमायालोहमोह जियमयओ।
जियमच्छरो य जम्हा तम्हा णामं जिणो उत्तो।।१३५।।



जितक्रोधो जितमानो जितमायालोभमोहः जितमदः।
जिमत्सरश्च यस्मात्तस्मान्नाम जिनः उक्तः।।

(जम्हा) क्योंकि अरहन्तदेव ने (जियकोहो जियमाणो जियमाया लोह-मोह-जियमयओ जियमच्छरो) क्रोध को जीता है, मान को जीता है, माया को जीता है, लोभ, मोह और मद को जीता है तथा मात्सर्य को जीता है (तम्हा) इसलिए (उनका) (जिणो णामं) "जिन" ऐसा नाम (उत्तो) कहा गया है।

अरहन्त देव जिन नाम से कहे जाते हैं, क्योंकि उन्होंने क्रोध, मान, माया, लोह, मोह, मद और मात्सर्य आदि सर्व विकारी परिणामों को जीत लिया है।

जम्मजरमरणतिदयं जम्हा दड्ढं जिणेण णिस्सेसं।
तम्हा तिउरविणासो होइ जिणे णत्थि संदेहो।।१३६।।
जन्मजरामरणत्रितयं यस्माद्दग्धं जिनेन निःशेषं।
तस्मात्त्रिपुरविनाशो भवति जिने नास्ति सन्देहः।।

(जम्हा) क्योंकि (जन्मजरमरणतिदयं) जन्म, जरा और मृत्यु तीन को (जिणेण) जिन देव के द्वारा (णिस्सेसं) पूर्ण रूपेण (दड्ढं) जला दिया गया (तम्हा) इसलिए (जिणे) जिन (तिउरविणासो) तीन पुरों के नाशक (होइ) होते हैं (संदेहो) इसमें सन्देह (णत्थि) नहीं है।

कोई ऐसा मानते हैं कि ब्रह्मा ने तीन गांवो को जलाया इसलिए वे त्रिपुरनाशक ब्रह्मा हैं, परन्तु एक गांव जलाने वाला भी पापी कहलाता है, तो फिर तीन गांव को जिसने जला दिया है उस पापी हिंसक को ब्रह्मा कहना, परमात्मा कहना युक्तिसंगत नहीं है। सत्यता यह है कि जिन अरहंत ने जन्म, मरण, बुढ़ापा इन तीन पुरों को वीतरागता से क्षय कर दिया है अर्थात् जन्म, जरा, मृत्यु रूप संसार का जिन्होंने नाश कर दिया है ऐसे जिन ही त्रिपुरनाशक त्रिलोकीनाथ ब्रह्मा हैं।

अरहंतपरमदेवं जो वंदइ परमभत्तिसंजुत्तो।
तेलोयवंदणीओ अइरेण य सो णरो होइ।।१३७।।
अर्हत्परमदेवं यो वन्दते परमभक्तिसंयुक्तः।
त्रिलोकवन्दनीयोऽचिरेण च स नरो भवतिः।।

(परमभत्तिसंजुत्तो) उत्कृष्ट भक्ति से युक्त होकर (जो) जो (अरहंतपरमदेव) अर्हंत देवाधिदेव की (वंदइ) वन्दना, स्तुति करता है (सो णरो) वह मनुष्य (अइरेण य) जल्दी ही (तेलोयवंदणीओ) तीन लोक में वन्दनीय (होइ) होता है।

जिन-भक्ति की अपूर्व महिमा है। उसी को यहाँ बताते हुए आचार्य देव कहते हैं कि जो भव्यात्मा सम्यक् श्रद्धा पूर्वक उत्कृष्ट भक्ति से युक्त होकर देवाधिदेव अरहन्त भगवान की एक बार भी वन्दना करता है वह उस भक्ति के प्रसाद से शीघ्र तीन लोक में वन्दनीय हो जाता है तथा अरहन्त पद को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।

जो जिणवरिंदपूअं कुणइ ससत्तीइ सो महापुरिसो।
तेलायपूअणीओ अइरेण य सो णरो होइ।।१३८।।
यो जिनवरेन्द्रपूजां करोति स्वशक्त्या स महापुरुषः।
त्रिलोकपूजितोऽचिरेण च स नरो भवति।।

(जो) जो (ससत्तीइ) अपनी शक्ति अनुसार (जिणवरिंदपूअं) जिनवरेन्द्र की पूजा को (कुणइ) करता है (सो महापुरिसो) वह महापुरुष (य सो णरो) अथवा वह मनुष्य (अइरेण) अतिशीघ्र (तेलोयपूअणीओ) त्रैलोक्य पूजित (होइ) होता है।

अन्तिम दो गाथाओं में जिनवर की वन्दना व पूजा का महत्व बताते हुए आचार्य श्री उपसंहार करते हैं- परम भक्ति युक्त जिन वन्दना के प्रसाद



से मनुष्य त्रैलोक्य वन्दनीय होता है तथा जिन-पूजा के फल से वह त्रैलोक्य में पूज्य होता है। विशेषता यह है कि यहाँ गाथा में जिन पूजा करने वाले मनुष्य को आचार्य श्री ने "महापुरुष" शब्द कहा है।

सव्वण्हू-परिक्खा सम्मत्ता-सर्वज्ञपरीक्षां (सर्वज्ञ परीक्षा समाप्त हुई)

धम्मो जिणेहिं भणिओ सायारो तह हवे अणायारो।
एएसिं दोण्हं पि हु सारं खलु होइ सम्मत्तं।।१३९।।
धर्मो जिनैः भणितः सागारस्तथा भवेदनगारः।
एतयोर्द्धयोरपि हि सारं खलु भवति सम्यक्त्वं।।

(जिणेहिं) जिनेन्द्र देव के द्वारा (भणिओ) कहा गया (धम्मो) धर्म (सायारो तह अणायारो) सागार और अनगार रूप (हवे) होता है (हु) निश्चय से (एएसिं दोण्हं पि) इन दोनों धर्मों में भी (खलु) वास्तव में (सारं) सार (सम्मत्तं) सम्यक्त्व (होइ) होता है।

जिनेन्द्र देव ने सागार और अनगार अर्थात् गृहस्थ धर्म और मुनिधर्म के भेद से धर्म का प्ररूपण दो प्रकार से किया है। इन दोनों धर्मों के धारक श्रावक व मुनि में भी आप्त, आगम व तत्व का सच्चा श्रद्धान रूप सम्यक्त्व की मुख्यता है। सम्यक्त्व के बिना सागार व अनगार का अपना कोई महत्व ही नहीं है।

सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हिययम्मि पवट्टए जस्स।
कम्मं बालुयवरणं तस्स बंधो च्चिय ण एइ।।१४०।।
सम्यक्त्वसलिलप्रवाहो नित्यं हृदये प्रवर्तते यस्य।
कर्म बालुकावरणं तस्य बन्धमेव नैति।।

(जस्स) जिसके (हिययम्मि) हृदय में (णिच्चं) नित्य (सम्मत्त-सलिल-पवहो) सम्यक्त्व रूपी जल का प्रवाह (पवट्टइ) प्रवर्तित है। (तस्स) उसके (कम्मं) कर्म (बालुयवरणं च्चिय) बालु के ढेर के सदृश (बंधो) बन्ध (ण एइ)

नहीं होता है।

जिसके आत्मा में निरन्तर सम्यक्त्व रूपी जल-धारा प्रवाहित होती रहती है उसके बालू के ढेर सम कर्म, बन्ध को ही नहीं प्राप्त होते हैं।

सम्मत्तरयणलब्भे णरयतिरिक्खेसु णत्थि उववाओ।
जइ ण मुयइ सम्मत्तं अहव ण बंधाउसो पुव्वं।।१४१।।
सम्यक्त्वरत्नलब्धे नरकतिर्यक्षु नास्ति उपपादः।
यदि मुंचति सम्यक्त्वं अथवा न बन्ध आयुषः पूर्वम्।।

(सम्मत्तरयणलब्भे) सम्यक्त्वरत्न की प्राप्ति होने पर (जइ) यदि (सम्मत्तं) सम्यक्त्व को (ण) नहीं (मुयइ) छोड़ता है (अहव) अथवा (पुव्वं) पूर्व में (बंधाउसो ण) आयु का बन्ध नहीं किया हो (जो वह जीव) (णरयतिरिक्खेसु) नारकी और तिर्यंचों में (उववाओ णत्थि) जन्म नहीं लेता है।

सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चारित्र ये तीन रत्न कहे गये हैं। ये आत्मा के आभरण हैं, इनमें यहाँ सम्यक्त्व रत्न की महिमा का वर्णन करते हुए आचार्य श्री ने लिखा है कि जिसकी आत्मा सम्यक्त्व रूपी रत्न से शोभायमान हो रही है। वह जीव मरण करके नारकी व तिर्यंचों में जन्म नहीं धारण करता है। कब नहीं धारण करता? प्रश्न होने पर समाधान करते हैं कि यदि सम्यक्त्व प्राप्त होने पर वह छूटा नहीं है अथवा पूर्व में नरक आदि आयु का बन्ध नहीं किया हो।

तात्पर्य इतना ही है कि यदि पूर्व में मनुष्य या तिर्यंच आयु का बन्ध कर लिया है और पश्चात् सम्यक्त्व हुआ हो तो आयु बन्ध टलता नहीं। अतः भोगभूमि के मनुष्य व तिर्यंचों में उस जीव की उत्पत्ति होती है। नरक आयु का बन्ध पूर्व में किया हो और बाद में सम्यक्त्व हुआ हो तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि तो पहले नरक से नीचे नहीं जाता है और क्षायोपशमिक अथवा औपशमिक सम्यवत्व को लेकर कोई नरक जाता नहीं अपितु वह पूर्वबद्धायु है। अन्तमुहूर्त



काल के लिए क्षायोपशमिक छूट जाता है। इस प्रकार आगम का नियम है।

पंचयअणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तिण्णेव।
चत्तारि य सिक्खावययाइं सायारो एरिसो धम्मो।।१४२।।
पंचाणुव्रतानि गुणव्रतानि भवन्ति त्रीण्येव।
चत्वारि च शिक्षा व्रतानि सागर एतादृशो धर्मः।।

(पंचयअणुव्वयाइं) पाँच अणुव्रत (तिण्णेव गुणव्वयाइं) तीन गुणव्रत (य) और (चत्तारि सिक्खावयाइं) चार शिक्षाव्रत (एरिसो) ऐसा (सायारो) सागार अर्थात् गृहस्थ (धम्मो) धर्म (हवंति) होते हैं।

अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्णायुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रहपरिमाणाणुव्रत ये पाँच अणुव्रत । दिग्व्रत, अनर्थदण्ड व्रत और भोगोपभोपरिमाण ये तीन गुणव्रत और सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथि संविभाग और अन्त में समाधिमरण ये चार शिक्षाव्रत। इस प्रकार बारह व्रतों का पालन करना गृहस्थ का धर्म है। इन बारह व्रतों का विवेचन आगे किया जायेगा।

देवयपियरणिमित्तं मंतोसहजंतभयणिमित्तेण।
जीवा ण मारियव्वा पढमं तु अणुव्वयं होइ।।१४३।।
देवतापितृनिमित्तं मंत्रौषधयंत्रभयनिमित्तेन।
जीवा न मारयितव्याः प्रथमं तु अणुव्रतं भवति।।

(देवयपियरणिमित्तं मंतोसहजंतभयणिमित्तेण जीवा ण मारियव्वा) देवों को बलि देने के निमित्त, पितर अर्थात् श्राद्ध के निमित्त, मंत्र औषधि, यन्त्र, भय आदि कारणों से जीवों को नहीं मारना चाहिए यह (पढ़मं) प्रथम (अणुव्वयं) अणुव्रत (होइ) होता है।

गृहस्थ धर्म धारक व्रती को देवों के लिए अर्थात् बलि चढ़ाने के लिए,

पितर के निमित्त, मन्त्र साधना, शरीर में रोग होने पर स्व- पर रोग निवारणार्थ औषध के निमित्त, यंत्र निमित्त तथा देव, तिर्यंच, मनुष्य अथवा दुष्टों के भय से भी कभी किसी जीव को नहीं मारना चाहिए। इस प्रकार हिंसा के त्यागी उस व्रती गृहस्थ का यह पहला अहिंसाणुव्रत कहलाता है।

वागादीहि असच्चं परपीडयरं तु सच्चवयणं पि।
वज्जंतस्स णरस्स हु विदियं तु अणुव्वयं होइ।।१४४।।
वागादिभिरसत्यं परपीडाकरं तु सत्यवचनमपि।
वर्जतो नरस्य हि द्वितीयं तु अणुव्रतं भवति।।

(वागादीही) वचन आदि के द्वारा (असच्चं) असत्य (तु) और (परपीडयरं)दूसरों को पीड़ाकारक (सच्चवयणंपि) सत्य वचनों को भी (वज्जंतस्स) त्याग करना (णरस्स) गृहस्थ का (हु) निश्चय से (विदियं अणुव्वयं) दूसरा सत्याणुव्रत (होइ) होता है।
गृहस्थ असत्य वचनों को स्वयं भी नहीं बोले, न दूसरों से बुलबाये तथा असत्य बोलने वालों की अनुमोदना भी नहीं करे। वह हंसी-मजाक में तथा क्रोध,लोभ,भय,हास्य के निमित्त से भी असत्य वचन बोलने का त्याग करे। साथ ही वह सागारधर्मधारी अणुव्रती दूसरों के लिए पीड़ा करने वाले सत्य वचनों को भी बोलने का त्याग करे। यह सागार धर्मधारी मानव का दूसरा सत्याणुव्रत है।

गाली-गलौज,अपशब्द,भण्डवचन,चुगली,पैशुन्य,मात्सर्यमय भाषा का भी सत्यअणुव्रत का धारी त्याग करे।

गामे णयरे रण्णे वट्टे पडियं च अहव विस्सरियं।
णादाणं परदव्वं तिदिय तु अणुव्वयं होइ ।।१४५।।
ग्रामे नगरे अरण्ये वृत्ते पतितं चाथवा विस्मृतं।
नादानं पर द्रव्यं तृतीयं तु अणुव्रतं ळावति।।



(गामे णयरे रण्णे वट्टे) किसी गांव, नगर, जंगल में रखे हुए (अहव) अथवा (पडियं) गिरे हुए (च) और (विस्सरियं) भूले हुए (परदव्वं) परद्रव्य को (णादाणं) ग्रहण नहीं करना (तिदियं तु) यह तीसरा (अणुव्वयं) अचौर्य अणुव्रत (होइ) होता है।

किसी भी ग्राम, नगर, जंगल अथवा घर, मन्दिर आदि किसी भी स्थान पर किसी की भी कोई भी वस्तु रखी हुई हो, गिर गई हो या भूली हुई हो तो उसे परद्रव्य समझ कर स्वामी की आज्ञा के बिना उसको नहीं लेना यह गृहस्थ अथवा सागार धर्मधारक श्रावक का तीसरा अचौयाणुव्रत होता है।

मायावहिणिसमाओ दट्ठव्वाओ परस्स महिलाओ।
सयदारे संतोसो अणुव्ययं तं चउत्थं तु।।१४६।।
मातृस्वसृसमाना दृष्टव्याः परस्य महिलाः।
स्वदारे सन्तोषोऽणुव्रतं तच्चतुर्थं तु।।

(परस्समहिलाओं) दूसरे की स्त्री को (मायावहिणिसमाओ) माता और बहिन के समान (दट्ठव्वाओ) देखना चाहिए (तं) उसको (सयदारे संतोसो) स्वदार संतोष नामक (चउत्थं तु) चतुर्थ व्रत जानना चाहिए।

"स्वदार सन्तोष" अर्थात् अपनी स्त्री को छोड़कर अन्य सभी स्त्रियों को माता व बहिन की तरह देखना, अपनी दृष्टि को उनके प्रति कभी भी नहीं बिगाड़ना यह गृहस्थ धर्म धारक का चतुर्थ स्वदार सन्तोष नामक व्रत है। इसी का दूसरा नाम ब्रह्मचर्याणुव्रत है।

धणधण्णदुपयचउप्पयखेत्तण्णछादियाण दव्वाणं।
जं किज्जइ परिमाणं पंचमयं अणुव्ययं होइ।१४७।।
धनधान्यद्विपदचतुष्पदक्षेत्रान्याच्छादनानां द्रव्याणां।
यत्क्रियते परिमाणं पंचमकं अणुव्रतं भवति।।

(धधण्णदुपयचउप्पयखेत्तण्णछादियाण) धन, धान्य, द्विपद अर्थात् स्त्री, पुत्र, नौकर-चाकर आदि चतुष्पद अर्थात् गाय, बैल, घोड़ा, हाथी, भैंस, बकरी आदि पशु खेत तथा आच्छादन करने वाले हिरण्य, सुवर्ण, वास्तु, कुप्य व भांड़ (दिव्वाणं) द्रव्यों का (जं) जो (परिमाणं) परिमाण (किज्जइ) किया जाता है (पंचमयं अणुव्ययं) पंचम परिग्रह परिमाण नामक अणुव्रत (होइ) होता है।

धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद, खेत तथा यहाँ आवरण करने वाली वस्तुओं से सोना, चाँदी के आभूषण, मकान से शीत, उष्ण की बाधा रुकती है। अतः वास्तु, कुप्य (वस्त्र) को ग्रहण करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि बाह्य दस प्रकार के परिग्रह का परिमाण करना परिग्रह परिमाण नाम का पंचम अणुव्रत कहलाता है।

जं तु दिसावेरमणं गमणस्सं दु जं च परिमाणं।
तं च गुणव्वय पढ़मं भणियं जियरायदोसेहिं।।१४८।।
यत्तु दिग्विरमणं गमनस्य तु यच्च परिमाणं।
तच्च गुणव्रतं प्रथमं भणितं जितरागदोषैः।।

(जं) जो (दिसावेरमणं गमणस्स) दिशाओं में आजीवन गमन का त्याग करना (दु जं च) और जो (परिमाणं) अवधि काल तक के लिए दस दिशाओं में गमन का जो परिमाण किया जाना है (तं) उसको (जियरायदोसेहिं) राग-द्वेष को जीतने वाले वीतराग प्रभु ने (पढमं गुणव्वयं) पहला गुणव्रत दिग्व्रत नामक (भणियं) कहा है।

पूर्व, आग्नेय, यम, नैऋत्य, वरुण, वायव्य, धनद, ऐशान, सोम व धरणेन्द्र इन दसों दिशाओं में गमन की आजीवन के लिए मर्यादा करना तथा जीवन पर्यन्त के लिए की गई मर्यादा में भी मास, पक्ष, ऋतु, अयन के लिए नगर, गांव, बाजार आदि की सीमा का परिमाण करना यह पहला दिग्व्रत नामक गुणव्रत वीतराग निर्दोषी जिनदेव ने कहा है।

विशेष- उमा स्वामी आचार्य ने तत्वार्थ सूत्र में..... दिग्व्रत, देशव्रत



को भिन्न-भिन्न गिनाया है। उन्होंने दिग्व्रत और देशव्रत तथा अनर्थदण्ड ये तीनगुणव्रत स्वीकार किये-अ. ७

इसी प्रकार समन्तभद्राचार्य ने भी दोनों को भिन्न-भिन्न स्वीकार किया परन्तु इन्होंने दिग्व्रत को गुणव्रत तथा देशव्रत को शिक्षाव्रत में ग्रहण किया। जबकि यहाँ प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्ता श्री पद्मनन्दी आचार्य जी ने "दिग्व्रत-देशव्रत" दोनों को प्रथम गुणव्रत स्वीकार किया है।

मज्जारसाणरज्जू दंड लोहो या अग्गिविससत्थं।
सपरस्स घादहेदुं अण्णेसिं णेव दादव्वं।।१४९।।
मार्जारश्वानरज्जु दण्ड लोहंश्च अग्निविषशस्त्राणि।
स्वपरस्य घातहेतूनि अन्येषां नैव दातव्यानि।।

(मज्जारसाणरज्जू) बिल्ली, कुत्ता, रस्सी (दंड) डण्डा (लोहो य) और लोहा (अग्गिविससत्थं) अग्नि, विष, शस्त्र (हथियार) (सपरस्य) अपने और दूसरों के (घादहेदुं) घात में निमित्तभूत ऐसे कोई भी पदार्थ (अण्णेसिं) दूसरों को (णेव) नहीं (दादव्वं) देना चाहिए।

सागार धर्म के पालक अहिंसाणुव्रती को बिल्ली, कुत्ता, रस्सी, लोहा, अग्नि, विष, आयुध तथा और भी स्वपर घातक पदार्थ- कैंची, चाकू, छुरा, सांकल आदि दूसरों को कभी नहीं देना चाहिए। कारण यदि चाकू छुरा आपने दिया दूसरे ने उससे सब्जी को सुधार, प्रमादवश उसमें जीवों की रक्षा नहीं हुई, एक छुरे की काट से तद्गत जीव मर गये अतः चाकू देने वाला भी हिंसा पाप का भागीदार होगा। अतः सज्जनों को इनसे बचना चाहिए।

वहबंधपासछेदो तह गुरुभाराधिरोहणं चेव।
ण वि कुणइ जो परेसिं विदियं तु गुणव्वयं होइ।।१५०।।
वधबन्धपाशच्छेदानि तथा गुरुभाराधिरोहणं चैव।
नापि करोति यः परेषां द्वितीयं गुणव्रतं भवति।।

बिना प्रयोजन से (वहबंधपासछेदो) मारना, बांधना, फन्दा (चेव) और (तह) उसी प्रकार (गुरु भाराधिरोहणं) शक्ति से अधिक भार लादना (जो) जो (परेसिं) दूसरों में (ण वि कुणइ) नहीं करता है (विदियं तु) वह उसका दूसरा गुणव्रत अनर्थ दण्डव्रत है।

बिना प्रयोजन दूसरों को मारना, बांधना, फन्दा डालना, छेदना, शक्ति से अधिक भार लादना, अधिक कार्य लेना आदि कार्य सागार धर्मधारी व्रती कभी नहीं करें।

बिना प्रयोजन शब्द की यहाँ मुख्यता है कारण गृहस्थाश्रम में श्रावक को अपनी संतान, नौकर, चाकर आदि के लिए कारणवशात् ये कार्य करना पड़ता हैं। गुरु शिष्य की रक्षार्थ पीटते हैं, मारते हैं वैसे ही माँ-पिता, सन्तान से गलती होने पर उसे सत्य मार्ग पर लाने के लिए ताड़ना आदि करते हैं। अतः बिना प्रयोजन ऐसे हिंसात्मक अथवा स्वपर घातक कार्य नहीं करना अनर्थ दण्डव्रत कहा गया है।

वच्छच्छभूसणाणं तंबोलाहरणगंधपुप्फाणं।
जं किज्जइ परिमाणं तिदियं तु गुणव्वयं होइ।।१५१।।
वस्त्रास्त्रभूषणानां ताम्बूलाभरणगंधपुष्पाणाम्।
यत्क्रियते परिमाणं तृतीयं तु गुणव्रतं भवति।।

(वच्छच्छभूसणाणं तंबोलाहरणगंधपुप्फाणं) वस्त्र, आयुध, श्रृंगार, पान, आभूषण, सुगन्ध, पुष्प आदि सेवनीय पदार्थों का (जं) जो (परिमाणं) परिमाण (किज्जइ) गुणव्रत (होइ) होता है।

जो वस्तुयें एक बार भोगने में आती हैं उन्हें भोग सामग्री कहते हैं तथा जो वस्तुयें बार-बार भोगने में आती हैं वे उपभोग सामग्री कहलाती हैं। वस्त्र, आभूषण, आयुध आदि उपभोग सामग्री हैं और श्रृंगार, ताम्बुल, गन्ध, पुष्प आदि भोग सामग्रियां हैं। इन भोगोपभोग सामग्री का परिमाण कर अन्य



के प्रति उदासीन रहना, ममत्व का त्याग करना सागार धर्म का तीसरा गुणव्रत जानना चाहिए।

पंचणमोक्कारपयं मंगलं लोगुत्तमं तहा सरणं।
णिच्चं झाएयव्वं उभय सज्झाहिं हिययम्मि।।१५२।।
पंचनमस्कारपदं मंगल लोकोत्तमं तथा शरणं।
नित्य ध्यातव्यं उभयोः सन्ध्ययोः हृदये।।

(मंगलं लोगुत्तमं तहा सरणं) तीन लोक में मंगल अर्थात् पापों का नाश करने वाला, उत्तम तथा शरणभूत ऐसे (पंचममोक्कारपयं) पंच नमस्कार पद का (हियमम्मि) हृदय में (णिच्चं) नित्य अर्थात् प्रतिदिन (उभए सज्झाहिं) दोनों सन्ध्याओं में ध्यान करना चाहिए।

पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला मंगल, लोक में उत्तम तथा एकमात्र शरण है। सागार को प्रतिदिन पंचपरमेष्ठी को हृदय में विराजमान कर, दोनों सन्ध्याकाल अर्थात् प्रातःकाल व सांयकाल पंच नमस्कार मंत्र का ध्यान करना चाहिए।

रूद्दट्ठविवज्जणं पि समदा सव्वेसु चेव भूदेसु।
संजमसुहभावणा वि सिक्खा सा वुच्चए पढमा।।१५३।।
रूद्रार्त्तविवर्जनमपि समता सर्वेषु चैव भूतेषु।
संयमशुभभावना अपि शिक्षा सा उच्यते प्रथमा।।

(पि) और भी बताते हैं (रूद्दट्टविवज्जणं) आर्त्त-रौद्र ध्यानों का त्याग कर (समदा सव्वेसु चेव भूदेसु) और सब प्राणियों में समता भाव धारण कर (संजमसुहभावणा) संयम धारण करने की शुभभावना करना (सा) वह (पढमा सिक्खा) प्रथम शिक्षाव्रत (वुच्चए) कहलाता है।

जिन व्रतों के पालन करने से संयम ग्रहण करने की शिक्षा मिलती है

उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं। ये शिक्षाव्रत चार हैं।

हिंसानन्दी, मृषानन्दी, चौर्यानन्दी व परिग्रहानन्दी भेद से रौद्रध्यान चार प्रकार का है। इस ध्यान में जीव हिंसा आदि पाप करके भी आनन्द मानता है। दूसरा है आर्तध्यान, यह दुःख को देने वाला है। इसके भी चार भेद हैं- इष्ट वियोगज, अनिष्ट संयोगज, पीड़ा चिन्तन व निदान बन्ध। ये दोनों ही ध्यान दुर्गति के कारण होने से त्याज्य हैं। रौद्रध्यान नरकायु बन्ध का कारण है तथा आर्तध्यान तिर्यंचायु बन्ध का कारण है।

आर्त-रौद्र दोनों ध्यानों को छोड़कर सुख-दुःख, जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, शत्रु-मित्र तथा संसार के समस्त जीवों में समता भाव का रखना और वह दिन मुझे कब प्राप्त होगा। जब मैं एकाकी निस्पृह, पाणिपात्र में आहार लेने वाला दिगम्बर यथाजात रूप को धारण कर पंचेन्द्रिय व मन को वश में कर, छः जीवनिकाय की रक्षा करने वाला संयम प्राप्त करूँगा। इस प्रकार की भावना निरन्तर करना यह "सामायिक" नामक प्रथम शिक्षाव्रत जानो। "संत साधु बनके विचरूं, वह घड़ी कब आयेगी।"

उववासो कायव्वो मासे मासे चउस्सु पव्वेसु।
हवदि या विदिया सिक्खा सा कहिया जिणवरिंदेहिं।।१५४।।
उपवासः कर्तव्यो मासे मासे चतुर्षु पर्वसु।
भवति च द्वितीय शिक्षा सा कथिता जिनेन्द्रैः।।

(य) और (मासे मासे) प्रत्येक माह में (चउस्सु पव्वेसु) चारों पर्वों में (उपवासो कायव्वो) उपवास करना चाहिए। (सा) वह (जिणवरिंदेहिं कहिया) जिनवरेन्द्र अर्थात् तीर्थंकरों के द्वारा कहा गया (विदिया सिक्खा) द्वितीय शिक्षाव्रत "प्रोषधोपवास" (हवदि) होता है।

"पर्व कहते हैं जो आत्मा को पवित्र करे" ऐसे पर्व एक माह में चार आते हैं- दो अष्टमी व दो चतुर्दशी। इन चारों पर्वों में सर्व सावद्य अर्थात् सब पापों का त्याग कर उपवास करना, दूसरा प्रोषधोपवास नाम का शिक्षाव्रत



कहलाता है। उपवास- समीप में वसना याने निवास करना अर्थात् सब पापों का त्याग करके अपनी आत्मा के निकट रहना। ऐसा जिनवरेन्द्र ने कहा है। "जिन" जीतने वाले को अर्थात् जिसने पंचेन्द्रिय विषयों को जीता है, वे जिन कहलाते हैं अपेक्षाकृत षष्ठमगुणस्थान से बारहवें तक के मुनि जिन संज्ञा को प्राप्त हैं तथा इनमें श्रेष्ठ सामान्य केवली जिनवर हैं और तीर्थंकर जिनवरेन्द्र कहलाते हैं। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि को जिनेन्द्र देव का लघु नन्दन कहा गया है।

असणइचउवियप्पो आहारो संजयाण दादव्वो।
परमाए भत्तीए तिदिया सा वुच्चए सिक्खा।।१५५।।
अशनादिचतुर्विकल्प आहारः संयतानां दातव्यः।
परमया भक्त्या तृतीया सा उच्यते शिक्षा।।

(परमाए भत्तीए) परम भक्ति सहित (असणाइचउवियप्पो) अशन, खाद्य, लोह्य, पेय के भेद से चार प्रकार के भोजन को (संजयाण) संयतों को (दादव्वो) देना चाहिए (सा) वह (तिदिया) तीसरी (सिक्खा) शिक्षा अर्थात् तीसरा शिक्षाव्रत (वुच्चए) कहलाता है।

पड़गाहन, उच्चस्थान, पादप्रक्षालन, पूजन, नमस्कार, मन शुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि व भोजन शुद्धि रूप नवधा भक्ति रूप परम भक्ति पूर्वक संयतजनों में "स्वाद्य, खाद्य, लेह्य, पेय रूप" चार प्रकार के आहार को देना यह सागार धर्मधारी का तृतीय शिक्षाव्रत कहा जाता है।

चइउण सव्वसंगे गहिऊण तह महव्वए पंच।
चरिमंते सण्णासं जं घिप्पइ सा चउत्थिया सिक्खा।।१५६।।
त्यक्त्वा सर्वसंगान गृहीत्वा तथा महाव्रतानि पंच।
चरमान्ते सन्यासं यत् गृहणति सा चतुर्थी शिक्षा।।

(चइऊण सव्वसंग) बाह्य-अभ्यन्तर सर्व परिग्रहों का त्याग करके (तह) तथा (पंच महव्वए) पाँच महाव्रतों को ग्रहण करके (जं) जो (चरिमंते सण्णासं) जीवन के अंत समय में सन्यास को अर्थात् समाधि को (धिप्पइ) ग्रहण करता है (सा) वह (चउत्थिया सिक्खा) चतुर्थ शिक्षा अर्थात चतुर्थ समाधिमरण नाम का शिक्षाव्रत है।

क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य और भाण्ड इस प्रकार दस प्रकार बाह्य परिग्रह व मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद व नपुंसकवेद इस प्रकार चौदह प्रकार का अन्तरंग परिग्रह, इन सबका त्याग करके जो पंचमहाव्रतों को धारण कर अपने जीवन का अन्तिम समय निकट जानकर जो समाधि अथवा सल्लेखना व्रत धारण करता है, उसके वह चतुर्थ समाधिमरण नामक शिक्षाव्रत होता है।

सल्लेखना अथवा समाधिमरण का उत्कृष्ट काल बारह वर्ष है और जघन्य काल अन्तमुहूर्त मात्र है। समाधिपूर्वक मरण करने वाला उत्कृष्ट दो तीन भव, जघन्य से सात-आठ भव के बाद निश्चित ही मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

एयाइं वयाइं णरो जो पालइ जइ सुद्धसम्मत्तो।
उप्पज्जिऊण सग्गे सो भुंजइ इच्छियं सोक्खं।।१५७।।
एतानि व्रतानि नरो यः पालयति यदि शुद्धसम्यक्त्वः।
उत्पद्य स्वर्गे स भुंक्ते इच्छितं सौख्यम्।।

(जइ सुद्ध सम्मत्तो) यदि आठ शंकादि दोष रहित आठ मद रहित तथा छह अनायतन व तीन मूढ़ता इस प्रकार पच्चीस दोषों से रहित शुद्ध सम्यग्दृष्टि (जो णरो) जो मनुष्य (एयाइं वयाइं) इन व्रतों का (पालइ) पालन करता है तो (सो) वह (सग्गे उप्पज्जिऊण) स्वर्ग में उत्पन्न होकर (इच्छियं सोक्खं) इच्छित सुखों को (भुंजइ) भोगता है।



शुद्ध सम्यग्दृष्टि मनुष्य बारह व्रतों का निरतिचार पालन करने के फल से स्वर्ग में उत्तम सुखों को भोगता है।

दिव्वाणि विमाणाणि य सुरलोए होंति पंचवण्णाइं।
दित्तीए आदिच्चं जिणंति चंदस्स कंतीए।।१५८।।
दिव्यानि विमानानि च सुरलोके भवन्ति पंचवर्णानि।
दीप्त्या आदित्यं जीयन्ते चन्द्रं कान्त्या।।

(सुरलोए) स्वर्ग लोक में (पंचवण्णाइं) पाँच वर्णों युक्त ऐसे (दिव्वाणि विमाणाणि) दिव्य विमान (होंति) होते हैं, जो विमान और कैसे हैं? (दित्तीए आदिच्चं) वे अपनी दीप्ति अर्थात् तेज से आदित्य को (य) और (कंतीए चंदस्स) कान्ति से चन्द्रमा को (जिणंति) जीतते हैं।

बारह व्रतों को शुद्ध सम्यक्त्व सहित पालन करने वाला जीव सम्यक्त्व सहित व्रत के प्रभाव से स्वर्गलोक में उत्पन्न होता है। स्वर्ग में जिन विमानों में वह रहता है उसका वर्णन यहाँ करते हैं- ये विमान पंचवर्णी होते हैं तथा उनका प्रकाश अथवा तेज सूर्य और चन्द्रमा की कान्ति को भी फीकी करने वाली होती है।

सोहंति ताइं णिच्चं पलंबवरहेमदामघंटाहिं।
बहुविहकूडेहिं तहा णाणाविह-धयपडायाहिं।।१५९।।
शोभन्ते तानि नित्यं प्रलंबवर-हेमदामघण्टाभिः।
बहुविधकूटैः तथा नाना विधध्वजापताकाभिः।।

(ताइं) वे विमान (णिच्च) सदा (पलंबरहेमदामघंटाहिं) नीचे को लटकती हुई उत्कृष्ट सुन्दर स्वर्णमयी मालाओं व घण्टों के द्वारा (तहा) तथा (बहुविहकूडेहिं) अनेक प्रकार के कूटों व (णाणविह-धयपड़ायाहिं) विविध प्रकार की ध्वजा पताकाओं के द्वारा (सोहंति) शोभायमान होते हैं।

विमान की शोभा का वर्णन करते हुए यहाँ बताते हैं कि विमानों में सुन्दर स्वर्णमयी मालायें नीचे को लटकती हुई, घण्टा तथा अनेक प्रकार की ध्वजायें तथा पताकायें रहती हैं जो पंचवर्ण युक्त विमानों की शोभा को बढ़ाती हैं।

तेसिं होंति समीवे बहुभेय-जलासया परमरम्मा।
सोहंति सव्वकालं फल-पुप्फ-पवाल-पत्तेहिं।।१६०।।
तेषां होंति समीपे बहुभेदजलाशयाः परमरम्याः।
शोभन्ते सर्वकालं फल-पुष्प-प्रवाल-पत्रेः।।

(तेसिं) उनके लिए (समीवे) पास में (परमरम्मा) अत्यन्त रमणीय (बहु-भेय-जलासया) नाना प्रकार के जलाशय/तालाब (होंति) होते हैं। वे (सव्वकालं) सभी समय (फलू-पुप्फ-पवाल-पतेहिं) फल, पुष्प, प्रवाल युक्त पत्रों से (सोहंते) शोभित रहते हैं।

पुण्य के प्रभाव से देवगति में अनेक सुन्दर जलाशय व षट्ऋतु के पुष्प, पत्र, प्रवाल सदा सुशोभित रहते हैं।

दट्ठण य उप्पत्तिं केह विज्जंति सेय-चमरेहिं।
केइ जय जयसद्दे कुव्वंति सुरा सउच्छाहा।।१६१।।
हष्ट्टा चोत्पत्ति केचित् वीजयंति श्वेतचमरैः।
केचित् जयजयशब्दान् कुर्वन्ति सुराः सोत्साहा।।

(य) तथा (केइ) कोई (उत्पत्ति) उत्पत्ति को/जन्म को (दटूण) देखकर (सेयचमदेहिं) श्वेतचमरों से (विज्जंति) हवा करते हैं। (केइ सुरा सउच्छाहा) कोई देव उत्साह पूर्वक (जय-जय-सद्दे) जय जय शब्द (कुव्वंति) करते हैं।

धर्म के प्रभाव से वहाँ स्वर्ग लोक में नवीन देव की उत्पत्ति देखकर कोई देव उत्साहपूर्वक उसकी श्वेतचमरों से हवा करते हैं तथा कोई जय-जय शब्द करते हैं।



वरमुरवदुंदुहिरओ भेरीओ संखवेणुवीणाओ।
पटुपडहझल्लरिओ वायंति सुरा सलीलाए।।१६२।।
वरमुरजदुन्दुभिरवानि भेर्यः शंखवेणुवीणाः।
पटुपटहझल्लर्यः वादयन्ति सुराः सलीलया।।

(वमुरवदुंदुहिरओ) कोई देव अच्छे मुरज, दुंदुभि नाद करते हैं तथा (केई सुरा सलीलाए) कोई देव क्रीड़ा से (संखवेणुवीणाओ पटुपउहझल्लरिओ वायंति) शंख, बांसुरी, वीणा, अच्छी मधुर पटह, झल्लरी बजाते हैं।

देवगण मिलकर अच्छे मधुर वादित्रों से दुंदुभिनाद करते हैं तथा मधुर ध्वनि वाले बाजे बजाते हुए क्रीड़ा करते हैं।

गायंति अच्छराओ काओ वि मणोहराओ गीयाओ।
काओवि वरंगीओ णच्चंति विलासवेसाओ।।१६३।।
गायन्ति अप्सरसः का अपि मनोहराणि गीतानि।
का अपि वरांगाड़ नृत्युन्ति विलासवेषाः।।

(काओ वि) कोई (अच्छराओ) देवांगनायें (मणोहराओ गीयाओ) सुन्दर मन को हरण करने वाले गीतों को (गायंति) गाती हैं और (काओ वि) कोई (वरंगीओ) देवांगनायें (विलासवेसाओ) सुन्दर मनोरंजक वस्त्रों को धारण कर ललित क्रीड़ा करती हुई (णच्चंति) नाचती हैं।

पुण्य व धर्म के प्रभाव से देव-लोक में सभी प्रकार के इन्द्रिय सुखादि प्राप्त होते हैं। वहाँ सुन्दर-सुन्दर अप्सरायें रहती हैं जो अपनी मधुर वाणी में मनोहर गीत गाती हैं। कोई-कोई सुन्दर परिधानधारण किये हुए स्त्रियोचित ललित क्रीड़ायें करती हैं तथा नृत्य करती हैं।

को मज्झ इमो जम्मो रमणीओ आसमो इमो को वा।
कस्स इमो परिवारो एवं चिंतेइ सो देओ।।१६४।।

किं मम इदं जन्म रमणीयं आसीदयं को वा।
कस्यायं परिवारः एवं चिन्तयति स देवः।।

(को मज्झ इमो जम्मो) यहाँ मेरा जन्म क्यों हुआ (वा) अथवा (इमो) यह (रमणीओ) रमणीय मनोहर (आसमो को) स्थान क्या है? (कस्स इमो परिवारो) यह किसका परिवार है (एवं) इस प्रकार (सो) वह (देओ) देव (चिंतेइ) चिन्तन करता है।

धर्म के प्रभाव से जैसे ही वह जीव स्वर्गलोक में उत्पन्न होता है, तत्काल वहाँ की भूमि की रमणीयता, वैभव आदि को देखकर, किंकर्तव्यविमूढ़ सा आश्चर्यचकित हो जाता है। क्षणैक विचार करता है-ओह! मेरा यहाँ जन्म क्यों हुआ? यह रमणीय स्थान कौन-सा है? यह सब किसका परिवार है? (देवांगनायें उसके चारों ओर सेविका के रूप में खड़ी हैं, देवगण चारों ओर उसकी सेवा में खड़े हैं यह सब परिवार देखकर) आदि।

णाऊण देवलोयं पुणरवि उप्पत्तिकारणं देओ।
सव्वंगजायभासो वियसियवयणो य चिंतेइ।।१६५।।
ज्ञात्वा देवलोकं पुनरपि उत्पत्तिकारणं देवः।
सर्वांग जातभासः विकसितवदनश्च चिन्तयति।।

(देओ) वह देव (देवलोयं णाऊण) यह स्वर्गलोक है ऐसा जानकर (पुणरवि) पुनः (उत्पत्तिकारणं सव्वंगजायभासो) उस देव लोक में मेरी अपनी उत्पत्ति के कारण को पूर्ण रूपेण सर्वांग से जान लिया है ऐसा होता हुआ (य) और (वियसियवयणो) प्रसन्नमुख हुआ (चिंतेइ) विचार करता है।

जब वह देव "यह देव लोक है" ऐसा अच्छी तरह जान लेता है तब अवधिज्ञान के बल से अपनी देवलोक में उत्पत्ति क्यों हुई इन कारणों को जानने के लिए प्रसन्न मुख पूर्वक चिन्तन करता है।



किं दत्तं वरदाणं को व मए सोहणो तवो चिण्णो।
जेण अहं सुरलोए अववण्णो सुद्धसरणीए।।१६६।।
किं दत्तं वरदानं किं वा मया शोभनं तपः धीर्णः।
येनाहं सुरलोके उपपन्नः शुद्ध सख्या।।

(किं मए वरदाणं दत्तं) क्या मैंने उत्तम दान दिया (व) अथवा (को सोहणो तवा चिण्णो) क्या शोभायुक्त/श्रेष्ठ तप किया। (जेण) जिससे (अहं) मैं (सुद्ध-सरणीए) शुद्ध मार्ग पर चलता हुआ (सुरलोए अववण्णो) सुरलोक में उत्पन्न हुआ।

सुरलोक में उत्पन्न होते ही वह जीव एक क्षण मात्र के लिए विचार करता है- अहो! मैंने कौनसा उत्तम दान दिया था या मैंने पूर्व में कौन से श्रेष्ठ तप का आचरण किया था जिससे कि मैं देवलोक में शुद्धमार्ग पर उत्पन्न हुआ।

णाऊण णिरवसेसं पुव्वभवे य जिणपुज्जआ रइया।
तो कुणइ णमोकारं भत्तीए जिणवरिंदाणं।।१६७।।
ज्ञात्वा निरवशेषं पूर्वभवे च जिनपूजा रचिता।
ततः करोति नमस्कारं भक्त्या जिनवरेन्द्राणाम्।।

(पुव्वभवे) पूर्वभव में मैंने (जिणपुज्जआ रइया) जो जिनेन्द्र देव की पूजा की थी उसी का यह सारा फल है (इति) इस प्रकार (णिरवसेसं णाऊण) पूर्ण रूपेण जानकार (तो) तब वह (भत्तीए) भक्ति से (जिणवरिंदाणं) देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान को (णमोकारं) नमस्कार (कुणइ) करता है।

देवों के भव-प्रत्यय अवधिज्ञान नियम से होता है। उस अवधि ज्ञान के बल से, अपने पूर्वभव में किये गये सुकृत्यों को पूर्णरूपेण जानकर, वह देव निश्चित जान लेता है कि यह सारा वैभव और देवों का परिवार, स्वर्गलोक की रमणीयता मुझे जिनपूजा के प्रसाद से प्राप्त हुई है। अतः तत्क्षण ही वह

सर्वप्रथम भक्ति से जिनेन्द्र देव को नमस्कार करता है।

पुणरवि पणमियमत्थो भणइ सुरो अंजलिं सिरे किच्चा।
धम्मायरियस्स णमो जेणा अहं गाहिओ धम्मो।।१६८।।
पुनरपि प्रणतमस्तकः भणति सुरः अंजलिं शिरसि कृत्वा।
धर्माचार्याय नमः येनाहं ग्राहितं धर्मः।।

(पुणरवि) पुनः (पणमियमत्थो) नम्रीभूत हो झुकाया है मस्तक जिसने ऐसा वह (सुरो) देव (अंजलि सिरे किच्चा) अपने दोनों हस्तपुट को बांधकर अंजुलि को मस्तक पर रखकर (भणइ) कहता है- (जेणाहं) जिन आचार्य से मैंने (धम्मो गाहिओ) धर्म ग्रहण किया (तं) उन (धम्मायरियस्स) धर्माचार्य के लिए (णमो) नमन हो।

"नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति" सज्जन लोग अपने लिए किये गये परकृत उपकार को कभी भूलते नहीं। तदनुसार वह देव स्वर्गलोक में भी जिनेन्द्र देव को नमस्कार करने के बाद जिन धर्माचार्य से उसने सागार धर्म को स्वीकार किया था। ऐसे महोपकारी आचार्य परमेष्ठी के लिए दोनों हाथों को मस्तक पर रखकर विनयपूर्वक नमस्कार करता है।

सो मज्झं वंदणीओ अहिगमणीओ य पूयणीओ य।
जस्स पसाएणहं उप्पणो देवलोयम्मि।।१६९।।
स मम वन्दनीयः अभिगमनीयश्च पूजनीयश्च।
यस्य प्रसादेनाहं उत्पन्नो देवलोके।।

आगे वह देव नम्रीभूत हो मस्तक झुकाकर कहता है (सो) वह सागार धर्म (य) भी (मज्झं) मेरे लिए (वंदणीओ) वन्दना करने योग्य है (अहिगमणीओ) अनुकरणीय है (य) और (पूयणीओ) पूजनीय है (जस्स पसाएणहं) जिस धर्म के प्रसाद से मैं (देवलोयम्मि) देवलोक अर्थात् स्वर्ग में



(उप्पणो) उत्पन्न हुआ हूँ।

सर्वप्रथम उस देव ने देवाधिदेव अरहंत प्रभु को नमस्कार किया, फिर गुरु के लिए नमस्कार कर अब यहाँ वह देव कहता है "बलिहारी उस सागार धर्म की है।" जिस धर्म के प्रसाद से मैंने स्वर्ग लोक में जन्म लिया। अतः ऐसा सागार धर्म मेरे लिए वन्दनीय, सतत अनुचरणीय व पूजनीय है।

अहिसेहगिहं देवा णाऊण करंति तस्स अहिसेहं।
पुणरवि अरुहं गेहं आणंति मणोहरं रम्मं।।१७०।।
अभिषेकगृहं देवा नीत्वा कुर्वन्ति तस्याभिषेकं।
पुनरपि अर्हगृहदं आनयन्ति मनोहरं रम्यं।।

(देवा) देवगण उस देव को (अहिसेहगिहं णाऊण) अभिषेक गृह में लाकर (तस्स अहिसेहं) उसका अभिषेक (करंति) करते हैं। (पुणरवि) उसके बाद फिर (मणोहरं) मन को हरण करने वाले ऐसे (रम्मं) सुन्दर (अरुहं गेहं) जिनगृह अर्थात् जिनमंदिर में लाते हैं।

पहले से देवलोक में स्थित अन्य देवसमूह उस पुण्यात्मा देव को सर्वप्रथम अभिषेक गृह में ले जाकर उसका अभिषेक करते हैं, पश्चात् अभिषेक किया है जिसने ऐसे उसको सुन्दर, सुखद, मनोहर अर्हन्त भगवान के मन्दिर में लाते हैं।

बहुभूसणेहि देहं भूसंता तस्स दिव्व मंतेहि।
अहिसिंचिऊण पुणरवि देवा बंधंति वरपट्टं।।१७१।।
बहूभूषणैः देहं भूषयन् तस्य दिव्यमंत्रैः।
अभिषिञ्च्य पुनरपि देवा बध्नन्ति वरपट्टम्।।

(पुणरवि) पुनः (देवा) देवगण (तस्स देहं) उस देव के शरीर को (बहुभूसणेहि) विविध प्रकार के आभूषणों के द्वारा (भूसंता) विभूषित करते हैं

तथा (पुणरवि) पुनः (दिव्वमंतेहि) दिव्यमंत्रों के द्वारा (तस्स) उसका (अहिसिचिंऊण) अभिषेक करके (वरपट्टं) वरपट्ट (बंधंति) बांधते हैं।

अन्य देव उसको विविध अलंकारों से सजाते हुए उसका दिव्यमंत्रों के द्वारा अभिषेक करके उसको वरपट्ट बांधते हैं।

सिंहासणटिठ्यस्स हु सुहगेहेसु सुट्ठ रमणीए।
उवगम्म केइ देवा जोग्गाइं कहंति कम्माइं।।१७२।।
सिंहासनस्थितस्य हि शुभगृहेषु सुष्ठु रमणीयेषु।
उपगम्य केचिद्देवा योग्यानि कथयन्ति कर्माणि।।

(केइ देवा) कोई देव (सुहगेहेसु) शुभविमानों में (सुट्ठ रमणीए) सुन्दर अच्छी देवांगनाओं के बीच (सिंहासणट्ठियस्स) सिंहासन पर विराजमान उस देव के पास (उपगम्म) जाकर (जोग्गाइं कम्माइं) करने योग्य कर्म को (कहंति) कहते हैं।

अभिषेक आदि क्रिया के पश्चात् वह अपने वैभव के साथ देवांगनाओं के बीच अच्छे विमान में सुन्दर सिंहासन पर विराजमान होता है। तब अन्य देवगण उसके पास जाकर सम्बोधित करते हैं कि "प्रथम तुम्हारे योग्य कार्य कौन सा है" इस प्रकार।

पढमं जिणिंदपूयं अवि चलवरलोयणं पुणो पच्छा।
वरणाडयस्स पिच्छा तह माणियं दिव्वबहुआइं।।१७३।।
प्रथमं जिनेन्द्र पूजा अपि चलवरलोचनं पुनः पश्चात्।
वरनाटकं दृष्टवा तथा मानितं दिव्य-बहुकानि।।

(पढमं) प्रथम (जिणिंदपूयं) जिनेन्द्र पूजा को (पच्छापुणों अवि) इसके अनन्तर भी (चल-वर-लोयणं) चंचल नेत्रों से (वरणाडयस्स) मनोरंजन पूर्ण नाटक को (पिच्छा) देखकर (तह) फिर (दिव्वबहुआइं) दिव्य अतिशयों का



(भाणियं) अनुभव किया है।

स्वर्ग में उत्पन्न होते ही सम्यग्दृष्टि देव सर्वप्रथम जिनेन्द्र देव की पूजा करते हैं पश्चात् दिव्यभोगों को अनुभव करते हैं।

पडिबोहिओ हु संतो अण्णेहिं सुरेहिं सुरवरो एवं।
तो कुणइ महापूअं भत्तीए जिणवरिंदाणं।।१७४।।
प्रतिबोधितो हि सन् अन्यैः सुरैः सुरवरः एवं।
ततः करोति महापूजां भक्त्या जिनवरेन्द्राणाम्।।

(अण्णेहिं सुरेहिं) अन्य देवों के द्वारा (पडिबोहिओ हु संतो) प्रतिबोधित हुआ (तो) तब (सुरवरो) वह इन्द्र (भत्तीए) बड़ी भक्ति से (जिणवरिंदाणं) जिनवरेन्द्र की (महापूंअ) महापूजा को (कुणइ) करता है।

अन्य देवों के द्वारा प्रतिबोधित होते ही वह सम्यग्दृष्टि सर्व काम, विलास, देवांगनाओं के सुन्दर मुखों के आलोकन आदि समस्त वासनाओं को छोड़कर दिव्य सुगंधित जल, दिव्य सुगंधित चन्दन, दिव्य अक्षत, दिव्य सौरभमयी पुष्पों, दिव्य नैवेद्य, दिव्य अष्टांग धूप व दिव्य फलों से जिनेन्द्र देव की महापूजा करता है।

कुणइ पुणो वि य तुट्ठो अडवेलालोयणं च सो देओ।
वरणाडयं स पेच्छा कुणइ पुणो पुव्वकयउत्ति।।१७५।।
करोति पुनरपि च तुष्टः अष्टवेलालोचनं च स देवः।
वरनाटकं स दृष्ट्वा करोति पुनः पूर्वकर्म इति।।

(पुणो) पुनः (सो देओ) वह देव (अडवेलालोयण तुट्ठो) देवांगनाओं के सुन्दर लोचनों का अष्ट प्रहर तक आलोकन करते हुए वह संतुष्ट हुआ (पुव्वकयउति) पूर्वकृत कार्य को (कुणइ) करता है (पुणो च) और फिर (स) वह देव (वरणाडयं) श्रेष्ठ अभिनय को (पेच्छा) देखकर (तुट्ठो) संतुष्ट

(कुणइ) होता है।

पश्चात् यह देव आठ प्रहर तक देवांगनाओं के दिव्य रूप को देखकर अति हर्षित होता है।

दिव्वच्छराहिं य समं उत्तंगपहहाराहिं चिरकालं।
अणुहवइ कामभोए अट्ठगुणरिद्धिसंपण्णो।।१७६।।
दिव्याप्सराभिश्च सम उत्तंगप्रभ हाराभिः चिरकालम्।
अनुभवति कामभोगान् अष्टगुणर्द्धिसम्पन्नः।।

(य) और (दिव्वच्छराहिं) दिव्य ऐसी सुन्दर देवांगनाओं के साथ (उत्तंगपहहाराहिं) उत्तम प्रभा के साथ (चिरकालं) लम्बे समय तक (कामभोए) काम भोगों का (अणुहवइ) अनुभव करता है व (अट्ठगुणरिद्धिसंपण्णो) अष्टगुण रूप महाऋद्धियों से सम्पन्न होते हैं।

पुण्य के प्रभाव से जीव देवलोक में अष्ट ऋद्धियों से सम्पन्न हुआ सुन्दर देवांगनाओं के साथ लम्बे समय तक काम भोगों का अनुभव करता है।

अणिमं महिमं लहिमं पत्ती पायम्म कामरूवित्तं।
ईसत्तं व वसित्तं अट्ठगुणा होंति णायव्वा।।१७७।।
अणिमा महिमा लघिमा प्राप्तिः प्रकाम्यं कामरूपित्वं।
ईशित्वं च वशित्व अष्टगुणा भवन्ति ज्ञातव्याः।।

(अणिमं) अणिमा, (महिमं) महिमा (लहिमं) लघिमा (पत्ती) प्राप्ति (पायम्म) प्राकम्य (कामरूवित्तं) कामरूपित्व (ईसत्तं) ईशत्व (च) और (वसित्तं) वशित्व (अट्ठगुणा) आठगुण (णायव्वा) ज्ञातव्य (भवंति) हैं।

अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, कामरूपित्व ईशत्व और वशित्व ये आठ ऋद्धियां जीव को धर्म के प्रभाव से प्राप्त होती हैं।



अणिमा ऋद्धि- जिस ऋद्धि के प्रभाव से बड़े से बड़ा शरीर का आकार भी अणुसम छोटा बना सके अणिमा ऋद्धि है।

महिमा ऋद्धि- जिस ऋद्धि के प्रभाव से छोटे से छोटा शरीर भी मेरूसम बना सके वह महिमा ऋद्धि है।

लघिमा ऋद्धि- जिस ऋद्धि के प्रभाव से मेरुसम भारी शरीर भी वायु की तरह हल्का बना सके वह लघिमा ऋद्धि है।

प्राप्ति ऋद्धि- जिसके प्रभाव से दूरस्थ मेरु पर्वतादि व चन्द्र, सूर्यों के बिम्ब हाथ की अंगुलियों से छुआ जा सके वह प्राप्ति ऋद्धि है।

प्राकाम्य ऋद्धि- जिसके प्रभाव से जल में थल की तरह, पृथ्वी पर गगन की तरह गमन कर सके वह प्राकाम्य ऋद्धि है।

कामरुपित्व ऋद्धि- जिस ऋद्धि के प्रभाव से इच्छानुसार अनेकों रूप युगपत बनाने की क्षमता प्राप्त हो वह कामरूपित्व ऋद्धि है।

ईशत्व ऋद्धि- जिसके प्रभाव से स्वामीपना प्राप्त हो वह ईशत्व ऋद्धि है।

वशित्व ऋद्धि- जिसके प्रभाव से समस्त संसारी जीव वश में हो जावें वह वशित्व ऋद्धि है।

इय अट्ठगुणो देओ जरवाहिविवज्जिओ चिरं कालं।
जिणधम्मस्स फलेण य दिव्वसुहं भुंजए जीओ।।१७८।।
इति अष्टगुणो देवो जराव्याधिविवर्जितश्चिरं कालं।
जिनधर्मस्य फलेन च दिव्यसुखं भुंक्ते जीवः।।

(इय) इस तरह (अट्ठगुणो देओ) आठ ऋद्धियों के देव (चिरकालं) बहुत समय तक (जर-वाहि-विवज्जिओं ) जरा, व्याधि से रहित (जीओ) जीव (जिणधम्मस्स) जिनधर्म के (फलेण) फल से (दिव्वसुहं) दिव्यसुख (भुंजए) भोगते हैं।

जिनधर्म के प्रभाव से वह देव अष्टऋद्धि युक्त हो जरा, व्याधि से रहित हुआ दिव्य सुखों को भोगता है।

इदि देवसुगइ-सम्मत्ता-इति देवसुगतिः समाप्ता।
(इस प्रकार देवगति का वर्णन समाप्त हुआ।)

भुंजित्ता चिरकालं दिव्वं हियइच्छिय सुहं सग्गे।
माणुसलोयम्मि पुणो उप्पज्जए उत्तमे वंसे।।१७६।।
भुक्त्वा चिरकालं दिव्य हृदयेप्सितं सुखं स्वर्गे।
मानुषलोके पूनः उत्पद्यते उत्तमे वंशे।।

(सग्गे) स्वर्ग में (हियइच्छियं) मनोवाछिंत (दिव्वं) दिव्य (सुहं) सुखों को (चिरकालं) चिरकाल तक (भुंजिता) भोगकर वह (पुणो) पुनः (माणुसलोयम्मि) मनुष्य लोक में (उत्तमे वंसे) उत्तम कुल में (उप्पज्जए) उत्पन्न होता है।

धर्म के फल से जीव देवायु को प्राप्त कर वहाँ मनोवांछित उत्तमोत्तम दिव्य सुखों को लम्बी अवधि तक सेवन करके, वह देव पुनः मानव पर्याय में उत्तम कुल में जन्म लेता है।

भुंजित्ता मणुलोए सव्वे हियइच्छियं अविग्घेण।
होऊण भोयविरओ जिणदिक्खं गिण्हए परमं।।१८०।।
भुक्त्वा मनुजलोके सर्वान् हृदयेप्सितान् अविघ्नेन।
भूत्वा भोगविरतो जिनदीक्षां गृहन्ति परमम्।।

(मणुलोए) मनुष्यलोक में (सव्वे हियइच्छियं) सभी मनोवांछित सुखों को (अविग्घेण भुंजिता) निर्विघ्नता से भोगकर (भोयविरओ) भोगों से विरक्त (होऊण) होकर (परमं) उत्कृष्ट (जिणदिक्खं) जिनदीक्षा को (गिण्हए) ग्रहण करता है।



धर्म के प्रसाद से मानव जीवन में भी सर्व मनोवांछित सुखों को बेरोक टोक भोगकर, स्वयं भोगों को बिजली की तरह क्षणस्थायी जान प्राप्त वैभव और काम-भोगों में आसक्ति से रहित सम्पूर्ण भोग-विलास, सुख-सम्पदा युक्त तीन लोक में सर्वश्रेष्ठ जिनदीक्षा को ग्रहण करता है।

डहिऊण य कम्मवणं उग्गेण तंवाणलेण णिस्सेसं।
आपुण्णभवं अणंतं सिद्धिसुहं पावए जीओ।।१८१।।
दग्ध्वा च कर्मवनं उग्रेण तपोऽनलेन निःशेषम्।
आपूर्णभवमनन्तं सिद्धिसुखं प्राप्नोति जीवः।।

(य) और (उग्गेण तवाणलेण) उग्र तप रूपी अग्नि के द्वारा (णिस्सेस) सम्पूर्ण (कम्मवणं) कर्मवन को (डहिऊण) जलाकर (आपुण्णभवं) आयु पूर्ण करके अथवा तद्भव की पूर्णता के पश्चात् (जीओ) जीव (अणंत सिद्धिसुहं) सिद्धालय में अनन्त काल तक सिद्धावस्था के अनन्त सुख को (पावए) प्राप्त करता है।

वह जीव मुनि अवस्था को धारण कर बारह तपों को विशेष-विशेष प्रकार से तपते हुए अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शयनासन और कायक्लेश आदि बाह्य तप तथा प्रायश्चित, विनय, वैय्यावृत्ति, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग व ध्यान अग्नि के द्वारा कर्मवन को जलाकर भव के अन्त में वह संसार के समस्त दुःखों से छूट जाता है तथा अनन्तकाल तक लोक के अग्रभाग में अनन्तसुखों को प्राप्त करता है।

सुमणुसहिए वल्लहमणाइसिद्धं तओ समासेण।
अणयारपरमधम्मं वोच्छामि समासओ पत्तो।।१८२।।
सुम नुसहिते वल्लभं अनादिसिद्धं ततः समासेन।
अनगारपरमधर्म वक्ष्ये समासतः प्राप्तम्।।

(तओ) तब (समासणो पत्तो) अल्प समय के लिए प्राप्त (सुमणुसहिए) उत्तम मनुष्य पर्याय सहित (वल्लहमणाइसिद्धं) प्रिय अनादि सिद्ध (समासेण) संक्षेप में (अणयारपरमधम्मं) साधु के परमधर्म को (वोच्छामि) कहूँगा।

बहुत थोड़े समय में ही उत्तम मनुष्य पर्याय सहित उत्कृष्ट, अनादि सिद्ध, अनगार के परम धर्म को मैं संक्षेप में कहूँगा।

अट्ठदस पंच पंच य मूलगुणा सव्व सदाणयाराणं।
उत्तरगुणा अणेया अणयारो एरिसो धम्मो।।१८३।।
अष्टादश पंच पंच य मूलगुणाः सर्व सदानगाराणां।
उत्तरगुणा अनेके अनगार एतादृशो धर्मः।।

(सदाणयाराणं) अनागारों के (अट्ठदस) अठारह (पंच) पाँच (य) और पाँच (सव्व) सब कुल अट्ठाइस (मूलगुणा) मूलगुण तथा (उत्तरगुणा अणेया) उत्तर गुण अनेक हैं (एरिसो) ऐसा यह (अणयारो) अनगार धर्म है।

पंच महाव्रत- पांच समिति, पंचेन्द्रिय निरोध, छः आवश्यक तथा सप्त विशेष गुण = ५ + ५ + ५ + ६ + ७ = २८ अट्ठाईस मूलगुणों का तथा ८४ लाख उत्तर गुणों का पालन करना अनगार चर्या है, यही अनगार धर्म है।

जे सुद्धवीरपुरिसा जाइजरामरणदुक्खणिव्विण्णा।
पालंति सुसुद्धभावा ते मूलगुणा य परिसेसा।।१८४।।
ये शुद्धवीरपुरुषा जातिजरामरणदुःखनिर्विग्नाः।
पालयन्ति सुशुद्धभावास्ते मूलगुणान् च परिशेषान्।।

(जे) जो (सुद्धवीरपुरिसा) देश, कुल, जाति से शुद्ध वीर पुरुष (मूलगुण) मूलगुणों को (परिसेसा पालंति) पूर्ण निर्दोष रीत्या पालन करता है (ते) वह (सुसुद्धभाव) उत्तम परम शुद्ध भावों युक्त हुआ (जाइजरामरणदुक्खणिव्विण्णा) जन्म, जरा, मृत्यु के दुःखों से मुक्त हो सिद्ध



अवस्था को प्राप्त करता है।

जिसका देश, कुल, जाति शुद्ध है ऐसे वीर पुरुष ही जिनमुद्रा धारण करने के अधिकारी होते हैं। जिन्होंने देश, कुल, जाति की शुद्धता सहित मूलगुणों का पूर्ण निर्दोष रीत्या पालन किया है, वह शुद्धोपयोगी मुनि परमशुद्धभावों से युक्त हो शीघ्र ही जन्म, जरा, मृत्यु रूप त्रय तापों के दुःखों से मुक्त होकर मुक्ति द्वीप का स्वामी बनता है।

इच्चेयावि सव्वे पालंति सीवरियं अगूहंता।
अवलुद्धयावधीरा संसारदुक्खक्खक्खयेच्छाए।।१८५।।
इत्यादिकानपि सर्वान् पालयन्ति स्ववीर्यं अगूहमानाः।
अपुलब्धका धीराः संसार - दुःखक्षयेछया।।

(आवलुद्रयाधीर) संतोषी, धीर-वीर-गंभीर महापुरूष ( संसारदुक्खक्खक्खयेच्छाए) संसार के दुःखों के क्षय करने की इच्छा से (इच्चेयावि सव्वे) ऊपर कथित सभी मूलगुणों व उत्तर-गुणों को (सीवरियं अगूहंता) अपनी शक्ति को नहीं छिपाते हुए (पालंति) पालन करते है।

अनगार धर्म अर्थात मुनिव्रत का पालन वही महापुरूष कर सकता है जो संसार से भयभीत हो, संसार के दुःखों के क्षय के लिये निरन्तर उत्साही है। संतोषी समतारस का लोलुपी जीव अपनी शक्ति को नहीं छिपाते हुए मुनि धर्म के योग्य व्रतों का यथावत् पालन करते है।

जहां स्वशक्ति शब्द मननीय है। जैसे रस्सी को अधिक खीचा तो टूट जावेगी वैसे ही शक्ति से अधिक व्रत संयमी अपमृत्यु के कारण बन सकते है इसी प्रकार शक्ति से कम किया जावे तो भी डूबने का प्रसंग आ सकता है अतः स्वशक्ति अनुसार आराधना करना राजमार्ग है।

हेमंते धिदिमंता णलिणिदलविणासियं महासीयं।
संसार दुक्खभीए विसहंति चंडंतिय सीयं।।१८६।।

हेमन्ते धूतिमन्तो नलिनीदलविनाशीतं।
संसारदुःखभयानपि सहन्ते चण्डमिति च शीतं।।

(संसारदुक्खभीए) संसार के दुःखों से भयभीत (घिदिमंता) धैर्यवान वह महामुनि (णलिणिदलविणासियं) कमल के दल को उखाडने वाली ऐसी (हेमंते) हेमन्त ऋतु में होने वाली (महासीतं) (य) और (चंडंति) प्रचण्ड गर्मी को इस प्रकार भयानक शीत व उष्ण को(विसहंति) सहन करता है।

संसार के भयानक दुःखों से भयभीत धीर, वीर महामुनिराज कमल के दल को उखाड़कर फैंक देने वाली ऐसी भयानक हेमन्त ऋतु को, शीत को, प्रचण्ड गर्मी को शान्त भाव से सहन करते हैं।

जल्लमलमइलिअंगा पावमलविवज्जिया महामुणिणो।
आइच्चस्सआहिमुहं करंति आदावणं धीरा।।१८७।।
जल्लमतल-मलिनितांगा पापमलविवर्जिता महामुनयः।
आदित्यस्याभिमुखं कुर्वन्ति आतापनं धीराः।।

(पावमलविवज्जिया) पाप मल से रहित (धीरा महामुणिणो) धीर वीर महामुनि (जल्लमलमइलिअंगा) पसीना व शरीर के मल से मलीन हो रहा है अंग जिनका ऐसे वे (आइच्चस्सआहिमुहं) सूर्य के समान मुँह को करके (आदावणं) आतापन योग धारण (करंति) करते हैं।

वे धीर, वीर महामुनि जिनका शरीर तो पसीना व शारीरिक मल से मलिन हो रहा है, परन्तु जिनका आत्मा सदैव पाप मल से रहित है, वे कर्मक्षयार्थ सूर्य के समान मुख करके भयानक जेठ मास की गर्मी में आतापन योग धारण करते हैं।

धारंधयारगहिले कापुरसिभयागरे परमभीमे।
मुणिणो वसंति रण्णे तरुमूले वरिसयालम्मि।।१८८।।



धारान्धकारगहने कापुरुष भयागरे परमभीमे।
मुणिणो वसन्ति अरण्ये तरूमूले वर्षाकाले।।

(मुणिणो) वे मुनि (वरिसयालम्मि) वर्षाकाल में (धारंधयारगिहले) भयानक पानी बौछार और हिमपात से युक्त ऐसे गहन अन्धकार में (कापुरसिभयागरे) दुष्ट पुरुष का जहाँ निरन्तर भय लगा हुआ है ऐसे (परमभीमे रण्णे) परमभयानक सुनसान जंगल में (तरुमूले) वृक्षों के तले (वसंति) रहते हैं।

वे धीर, वीर महामुनि जो एकमात्र कर्मों के प्रक्षालन में आतुरचित्त हैं। वषाऋतु में भीषण मूसलाधार पानी की बौछार से जहाँ गहन अंधकार छाया हुआ है, दुष्ट पुरुषों की पीड़ा का जहाँ निरन्तर भय बना रहता है वे सुनसान भयानक जंगल में वृक्षों के तले निवास करते हैं।

अणयारपरमधम्मं धीरा काऊण सुद्धसम्मत्ता।
गच्छंति केई सग्गे केई सिज्झंति धुदकम्मा।।१८९।।
अनगारपरमधर्म धीराः कृत्वा शुद्धसम्यक्त्वाः।
गच्छन्ति केचित् स्वर्गे केचित् सिद्धयन्ति धुतकर्माणः।।

(धीरा शुद्धसम्मत्ता) विशुद्ध सम्यक् दृष्टि धीर मुनिराज इस (अणयारपरमधम्मं काऊण) परम उत्कृष्ट अनगार धर्म को धारण करके (केई) कोई तो (सग्गे) स्वर्ग में (गछंति) जाते हैं और (केइ) कोई (धुदकम्मा) कर्मों का नाश करके (सिज्झंति) सिद्ध पद प्राप्त करते हैं।

परम उत्कृष्ट अनगार धर्म पालन का फल क्या है? उसे आचार्य यहाँ गाथा में बताते हैं कि "इस परम-पवित्र अनगार धर्म के पालन करने के फल स्वरूप कोई तो स्वर्ग में मनोवांछित सुखों का लाभ प्राप्त करते हैं तथा कोई अष्टकर्मों का क्षय करके लोकाग्र निवासी बन सिद्ध सुख को प्राप्त करते हैं।

ण वि अत्थि माणुसाणं आदसमुत्थं च्चिय विषयातीदं।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं अणोवमं जं च सिद्धाणं।।१६०।।
नाप्यस्ति मनुजानां आत्मसमुत्थं एवं विषयातीतम्।
अव्युच्छिन्नं च सुखं अनुपमं यच्च सिद्धानाम्।।

(जं) जो (आदसमुत्थं) आत्मा से उत्पन्न हुआ (विषयातीदं) इन्द्रिय विषयों से रहित (अव्वुच्छिण्णं) शाश्वत (च) और (अणोवमं) अनुपम (सुहं) सुख (सिद्धाणं) सिद्धों को प्राप्त है (च्चिय) इस प्रकार का सुख (माणुसाणं वि) मनुष्यों को भी (ण अत्थि) प्राप्त नहीं है।

सिद्धों के सुख का वर्णन करते हुए यहाँ आचार्यदेव कह रहे हैं- सिद्धों का सुख आत्मा से उत्पन्न हुआ है, पंचेन्द्रिय विषयों की अपेक्षा से रहित है, सादि अनन्त काल तक निर्बाध रूप से रहने वाला तथा अनुपम है वैसा सुख मनुष्यों में नहीं है।

अट्टविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्टगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।।१६१।।
अष्टविधकर्मविकलाः शीतीभूता निरंजना नित्याः।
अष्टगुणाः कृतकृत्या लोकाग्रनिवासिनः सिद्धाः।।

(सिद्धा) सिद्ध भगवान (अट्ठविहकम्मवियल) आठ प्रकार के कर्मों से रहित (सीदीभूदा) शान्त भूत (णिरंजणा) कर्म अंजन से रहित (णिच्चा) नित्य (अट्ठगुणा) आठ गुणों से युक्त (किदकिच्चा) कृतकृत्य (लोग्गणिवासिणो) लोक के अग्र भाग में निवास करने वाले हैं।

सिद्ध भगवान ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठ कर्मों से रहित, प्रशान्त मूर्ति, निरंजन,



सदा शान्त रहने वाले, सम्यक्दर्शनादि अष्टगुण सहित, कृतकृत्य अर्थात् जिन्हें संसार में करने के लिए कोई कार्य शेष नहीं रह गया है तथा जो सादि अनन्त काल तक लोक के अग्रभाग में निवास करते हैं।

सम्मत्त णाण दंसण वीरिय सुहमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।१६२।।
सम्यक्त्वं ज्ञानं दर्शनं वीर्य सूक्ष्मं तथैवावगाहनम्।
अगुरुलघु अव्याबाधं अष्टगुणा भवन्ति सिद्धानाम्।।

सिद्धों के आठ गुण कौन से हैं - (सम्मत्त) क्षायिक सम्यक्त्व, (णाण) क्षायिक ज्ञान (दंसण) अनन्त दर्शन (वीरिय) अनन्त वीर्य (सुहमं) सूक्ष्मत्व (तहेव) इसी प्रकार (अवगहणं) अवगाहनत्व (अगुरुलहुमव्वावाहं) अगुरुलघत्व, अव्याबाधत्व (सिद्धाणं) सिद्धों के (अट्टगुणा) आठ गुण (होंति) होते हैं।

सर्व कर्मों से मुक्त ऐसे सिद्ध भगवान लोकाग्र में क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व इन आठ गुणों से शोभायमान होते हैं।

भवियाण वोहणत्थं इय धम्मरसायणं समासेण।
वरपउमणंदिमुणिणा रइयं जमणियमजुत्तेण।।१६३।।
भव्यानां बोधनार्थं इदं धर्मरसायनं समासेन।
वरपद्मनन्दिमुनिना रचितं यमनियमयुक्तेन।।

(इय) यह (वरधम्मरसायणं) उत्तम धर्म रसायन ग्रन्थ (भवियाण वोहणत्थं) भव्यजीवों के बोधनार्थ (जमणियमजुत्तेण) यम और नियम को पालने वाले (पउमणंदिमुणिणा) "पद्मनन्दी" मुनि के द्वारा (समासेन) संक्षेप में (रइयं) रचा गया।

सागार और अनगार धर्म रूपी अमृत का पान कराने वाला सुन्दर

उत्तम यह धर्म रसायन ग्रन्थ श्री दिगम्बर जैन धर्म के यत्याचार के पालक यम-नियम के धारक ऐसे महामुनिराज श्री पद्मनन्दीजी के द्वारा भव्य जीवों को सम्बोधनार्थ संक्षिप्त में रचा गया।

।।इदि सिदिधम्म रसायणं सम्मत्तं।।



# समाप्त